प्रकाशक—
श्री बैजनाथ केडिया
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस

शाखाएँ—
२०३ हरिसनरोड, कलकत्ता
बाँकीपुर, पटना
दरीबाकलाँ, दिल्ली

मुद्रक—
कृष्ण गोपाल केडिया
वणिक प्रेस,
साक्षीविनायक, बनारस।

आनन्दमठ

पहला खण्ड

कथामुख

—:❀०❀:—

बड़ी दूरतक फैला हुआ घना जङ्गल है। तरह-तरहके पेड़ मौजूद होनेपर भी अधिकतर शालके ही वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। उन पेड़ोंके सिरे और शाखा-पत्र एक दूसरेसे ऐसे मिले हुए हैं, और बहुत दूरतक वृक्षोंकी ऐसी घनी श्रेणी बन गयी है कि उनके बीचमें तनिक भी छिद्र या फांक नहीं मालूम पड़ती; यहाँ-तक कि प्रकाश आनेका भी कहींसे रास्ता नहीं रह गया है। इस प्रकार वृक्षके पल्लवोंका अनन्त समुद्र हवाकी तरङ्गोंपर नाचता हुआ, कोसोंतक फैला हुआ दिखाई पड़ता है। नीचे घोर अन्धकार है। दोपहरमें भी सूर्यकी रोशनी साफ नहीं मालूम पड़ती। वहाँका दृश्य बड़ा ही भयानक मालूम पड़ता है; इसीसे उसके भीतर कभी कोई आदमी नहीं जाता। पत्तोंकी लगातार खड़खड़ाहट और जंगली जानवरों तथा चिड़ियोंकी बोलीके सिवाय और कोई शब्द वहाँ नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो इस लम्बे-चौड़े और घने जंगलमें आप ही सदा अन्धकार छाया रहता है; दूसरे रातका समय, फिर क्या पूछना है? दो पहर रात बीत गयी है—बड़ी अन्धेरी रात है। जंगल तो जंगल, बाहर भी खूब अन्धेरा है, हाथको हाथ नहीं सूझता। बनके भीतर तो ऐसा अन्धेरा हो रहा है, जैसा भूगर्भमें होता है।

सारे पशु-पक्षी चुप हैं। न जाने कितने, लाखों-करोड़ों पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग इस जंगलमें बसेरा करते हैं, पर इस समय किसीकी बोली नहीं सुनाई पड़ती। उस अन्धकारका अनुमान भले ही हो जाय, पर

शब्दमयी पृथ्वीकी इस निस्तब्धताका तो अनुमान ही नहीं हो सकता। उसी अनन्त शून्य अरण्यमें, उसी सूचीभेद्य अन्धकारमयी रात्रिमें उस प्रगाढ़ निस्तब्धताको भंग करते हुए न जाने किसने कहा—"मेरी मनोकामना पूरी न होगी?"

इस आवाजके बाद ही वह अरण्य मानों फिर निस्तब्धताके समुद्रमें डूब गया। अब भला कौन कह सकता है कि इस जंगलमें अभी मनुष्यकी बोली सुनाई पड़ी थी? थोड़ी ही देर बाद फिर वैसा ही शब्द सुनाई पड़ा—फिर भी किसी मनुष्य-कण्ठने उस निस्तब्धताके समुद्रको मथते हुए कहा—"क्या मेरी मनो-कामना पूरी न होगी?"

इस प्रकार तीन बार उस निस्तब्ध समुद्रमें खलबली पैदा हुई। तब किसीने मानो पूछा—"अच्छा बोलो, दावपर क्या रखते हो?"

प्रत्युत्तर मिला—"मैं अपना जीवनसर्वस्व दावपर लगाता हूँ।"

प्रतिशब्द हुआ—"जीवन तुच्छ पदार्थ है, उसे तो सभी लोग त्याग करते हैं।"

"तब और मेरे पास है ही क्या, जो दे सकूँ?"

उत्तर मिला—"भक्ति!"

———

पहला परिच्छेद

—:*:*:—

संवत् ११७६ की ग्रीष्म ऋतुका समय है, कड़ाकेकी धूप पड़ रही है। बंगालके पदचिह्न नामक गाँवमें घर तो बहुत हैं, पर आदमी कहीं नहीं दिखाई पड़ते। बाजारमें कतार-की-कतार दुकानें हैं, हाटमें छपरियोंका तांतासा लगा हुआ है, हर टोले-मुहल्लेमें सैकड़ों मिट्टीके बने मकान नजर आते हैं, बीच-बीचमें छोटी बड़ी अटारियां भी दिखाई देती हैं, पर आज सब जगह सन्नाटा छाया हुआ है। बाजारकी दूकानें बन्द हैं—दूकानदार किधर भाग गये हैं पता नहीं। आज हाटका दिन है, तो भी हाट नहीं लगी। आज 'सदावर्त' का दिन है पर भिखमंगे भिक्षा लेनेके लिये घरसे बाहर निकले ही नहीं। जुलाहोंने आज कपड़ा बुनना छोड़ दिया है और घरके एक कोनेमें बैठे हुए रो रहे हैं। व्यापारी अपना रोजगार छोड़ बच्चेको गोदमें लिए आंसू बहा रहे हैं। दाताओंने दान देना बन्द कर रक्खा है, पण्डितोंने पाठशाला बन्द कर दी है। शायद दूधपीते बच्चे भी खुलकर रोनेका साहस नहीं करते। राजपथपर आदमी चलते-फिरते नहीं नजर आते, सरोवरोंपर कोई स्नान करने वाला नहीं दिखलाई देता, घरके दरवाजोंपर कोई आदमी बैठा नहीं दीखता, पेड़ोंपर पंछी न रहे, चारागाहोंमें गौएँ चरती नहीं दीखतीं—हां, श्मशानमें स्यारों और कुत्तोंकी पलटन तैयार है। एक बड़ीसी अट्टालिकाके बड़े-बड़े कलशदार खम्भे दूरसे उस गृहारण्यमें शैलशिखरकी तरह शोभा दे रहे हैं। पर यह शोभा भी कोई शोभा है? दरवाजे बन्द हैं, घरमें कोई आदमी नहीं मालूम पड़ता, किसी तरहकी आहट नहीं सुनाई देती। शायद हवा भी विघ्नोंके भयसे उस घरमें

प्रवेश करती हुई डरती है। मकानके भीतर इस दोपहरके समय भी अन्धेरा छाया है। इसी अन्धेरे घरके एक कमरेमें एक अति सुन्दर स्त्री और पुरुष बैठे हुए सोच सागरमें डूब-उतरा रहे हैं। उनके सामने प्रलयका दृश्य उपस्थित है।

संवत् ११७४ में फसल अच्छी नहीं हुई, इसलिये ११७५ में चावलकी बड़ी महँगी रही, प्रजा घोर विपद्में रही, लेकिन राजाने अपनी मालगुजारी पाई-पाई वसूल कर ली। मालगुजारी बेबाककर बेचारी दरिद्र प्रजाने एक ही वक्त खाकर दिन बिताये। ११७५ में अच्छी बरसात हुई, लोगोंने सोचा कि चलो, इस साल तो दैवकी कृपा हो गयी। आनन्दसे फूलकर ग्वाले खेतोंमें गीत गाते हुए दिखाई देने लगे, गृहस्थोंकी स्त्रियाँ अपने स्वामीसे चांदीके गहने गढ़ा देनेके लिये मचलने और हठ करने लगीं। एकाएक आश्विनके महीनेमें विधाता वाम हो गये। आश्विन और कार्तिकमें एक बूँद भी जल न पड़नेसे खेतोंमें धान सूखकर खाक हो गये। किसी-किसीके एक दो बीघों में धान नहीं सूखने पाये थे पर वे सब राजाके नौकरोंने सैनिकोंके खर्चके लिये खरीद लिये। अब तो लोगोंको अन्न मुहाल हो गया। पहले तो लोगोंने कुछ दिनोंतक एक ही बेला भोजन किया, फिर एक ही बेला आधा पेट खाकर बिताया, इसके बाद दोनों बेला उपवास करने लगे। चैतमें थोड़ी बहुत रबी पैदा हुई सही, पर वह भी सबके खाने भरको न हुई। इतने पर भी सरकारी तहसीलदार मुहम्मद रजा खांने इसी मौके-को अपनी खैरख्वाही दिखलानेके लिये अच्छा समझा और एकबारगी दस रुपया सैकड़ा लगान बढ़ा दिया। सारे बंगालमें घोर हाहाकार मच गया।

पहले तो लोगोंने भीख मांगनी शुरू की, पर भीख मिलनी भी मुश्किल हो गयी। कौन किसे भीख देता? सब लगे उपवास करने। धीरे-धीरे लोग बीमार पड़ने लगे। लोगोंने गाय-गोरू बेच दिये, हल बैल बेच दिये,

बीजके अन्न खा डाले, घर-द्वार बेच डाला, जगह-जमीन भी बेच दी। इसके बाद लड़की बेंचना शुरू किया। फिर लड़के बिकने लगे। अन्तमें स्त्री बेचनेकी भी नौबत आ पहुंची, पर लड़का-लड़की और स्त्री भी कोई कहाँतक खरीदे! खरीददारोंका ही टोटा हो गया। सब बेचनेको ही तैयार नजर आने लगे। अन्न न मिलनेपर लोग पेड़के पत्ते नोच-नोच कर खाने लगे। उससे हटे तो घास खाने लगे। जंगली पेड़-पौधोंपर दिन काटने लगे। नीच और जंगली लोग तो कुत्तों, बिल्लियों और चूहोंको मार कर खाने लगे। बहुत से आदमी देश छोड़कर भाग गये, पर वे विदेशमें ही अन्नके अभावसे मर गये। जो नहीं भागे, उनमेंसे कितने अखाद्य भोजनसे भूखके कारण रोगी होकर प्राण त्याग करने लगे।

मौका पाकर रोगोंने जोर पकड़ा। ज्वर, हैजा, क्षय और चेचकका प्रकोप बढ़ गया। खासकर चेचकका तो बहुत जोर हुआ। घर-घरमें चेचकसे मौत होने लगी। कौन किसे जल देता है? कौन किसे छूने जाता है? न कोई किसीकी चिकित्सा करता है, न किसीको देखने जाता है। मरनेपर कोई लाश उठानेवाला नहीं मिलता। लाशें घरमें पड़ी-पड़ी सड़ने लगीं। जिस घरमें चेचक प्रवेश करता, उस घरके लोग डरके मारे रोगीको छोड़कर भाग जाते।

इस ग्राममें महेन्द्र सिंह बड़े धनी थे। पर आज धनी-निर्धन सब एक ही भाव हो रहे हैं। इसी दुःखकी घड़ीमें व्याधि-ग्रस्त हो, उनके सभी आत्मीय स्वजन और दास-दासी उन्हें छोड़कर चल दिये। कोई मर गया, कोई भाग गया। आज उनके बहुत बड़े परिवारमें केवल उनकी स्त्री, एक छोटी कन्या और स्वयं वे रह गये हैं। इस समय हम उन्हींका हाल लिखते हैं।

उनकी पत्नी कल्याणीने लज्जा छोड़, गोशालामें जाकर स्वयं अपने हाथों दूध दुहा। उसे गरमकर कन्याको पिलाया और गौओंको घास

और जल देने चली गई। उसके लौट आनेपर महेन्द्रने कहा—"इस तरहसे कितने दिन चलेंगे?"

कल्याणीने कहा—"बहुत दिन तो नहीं चलेगा, पर जबतक चलता है चलाये जाती हूँ। इसके बाद तुम लड़कीको लेकर शहरमें चले जाना।"

महेन्द्र—"जब शहरमें गये बिना काम नहीं चलनेका, तब फिर तुम्हें इतना दुःख क्यों दूँ? चलो अभी चलें।"

इसपर दोनोंमें खूब तर्क-वितर्क होते रहे। अन्तमें कल्याणीने कहा—"क्या शहरमें जानेसे कोई विशेष उपकार होगा?"

महेन्द्र—"सम्भव है, वह स्थान भी ऐसा ही जनशून्य हो गया हो और वहाँ भी प्राण रक्षाका कोई उपाय न हो।"

कल्याणी—"मुर्शिदाबाद काशिम बाजार या कलकत्ते जानेसे प्राणरक्षा हो सकती है। अब तो यह स्थान अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।"

महेन्द्र—"यह घर बाप-दादोंके समयसे सञ्चित धनोंसे परिपूर्ण है, इसे छोड़कर चले जानेसे तो सब लुट जायगा।"

कल्याणी—"यदि घरमें लुटेरे आ ही पड़ेंगे तो हमी दोनोंसे रक्षा थोड़े ही हो सकेगी? जब प्राण ही न रहेंगे, तब धन कौन भोगेगा? चलो, अभी घरमें ताला बन्द करके चल दें। यदि प्राण बच गये तो फिर लौट आनेपर इन सब चीजोंकी फिकर करेंगे।"

महेन्द्र—"क्या तुम पैदल रास्ता चल सकोगी? पालकीवाले कहार तो सब मर चुके। यदि बैल हैं, तो गाड़ीवान नहीं; और गाड़ीवान है तो बैल नहीं।"

कल्याणी—"मैं पैदल चल सकूँगी, तुम इसके लिये चिन्ता मत करो।"

कल्याणीने मन ही मन सोचा, यदि मैं रास्ता न चल सकी तो

बहुत होगा मैं मर जाऊँगी पर ये दोनों बाप-बेटी तो बच जायँगी।

दूसरे ही दिन सवेरे दोनों स्त्री-पुरुष थोड़ा-सा द्रव्य अपने साथ ले घरमें ताला लगा, गाय-गोरूको खुला ही छोड़, कन्याको गोदमें ले राजधानीकी ओर चल पड़े। थोड़ी दूर चलकर महेन्द्रने कहा—"रास्ता बड़ा ही विकट है, पग-पग पर लुटेरे मिलते हैं, खाली हाथ जाना ठीक नहीं।" यह कह वे लौट पड़े और घरमें से बन्दूक और थोड़ीसी गोली-बारूद ले ली।

यह देख कल्याणीने कहा—"हथियारकी भी अच्छी याद दिलायी। तुम जरा सुकुमारीको गोदमें लिये रहो—मैं भी कुछ हथियार सङ्गमें ले लूँ।" यह कह कन्याको महेन्द्रकी गोदमें दे, कल्याणी भी घरके अन्दर जाने लगी।

महेन्द्रने पूछा—"तुम कौन सा हथियार सङ्ग ले चलोगी?" घरमें आकर कल्याणीने एक छोटी-सी डिबिया निकाली और उसे अपने कपड़ेके अन्दर छिपा लिया। उस डिबियामें जहर रखा हुआ था। विपत्तिके दिन हैं, न जाने कब क्या हो, यही सोचकर कल्याणीने पहलेसे अपने पास विष रख लिया था।

जेठका महीना था। कड़ाकेकी धूपसे पृथ्वी आगसे भरी भट्ठीकी तरह दहक रही थी। दोपहरकी लूह आगकी लपटोंको मात करती थी। आसमान तपे हुए तांबेकी चद्दरकी तरह तप रहा था। रास्तेकी धूल आगकी चिनगारी बन रही थी। कल्याणीको राह चलते-चलते पसीना आने लगा। वह कभी बबूलके पेड़के नीचे, कभी खजूरकी छायामें बैठकर, सूखे हुए सरोवरका गँदला पानी पीकर बड़े कष्टसे रास्ता तय करने लगी। लड़की महेन्द्रकी गोदमें थी। वह रह-रहकर उसके मुँहपर हवा करते जाते थे। इस तरह चलते-चलते उन्हें हरे-हरे पत्तोंसे सुशोभित सुगन्धित कुसुमोंसे लदी हुई लताओंसे वेष्टित वृक्षोंकी सघन छाया मिली, दोनोंने बैठकर विश्राम किया।

महेन्द्र कल्याणीकी श्रमसहिष्णुता देखकर विस्मित थे। पासमें एक छोटा-सा जलाशय था, उसमें अपना वस्त्र भिगो लायें और उसी जल-से अपने मुँह, हाथ, पैर धोये।

कल्याणीका जी कुछ ठण्ढा हुआ ; पर क्षुधाकी ज्वालासे वे बड़ व्याकुल हो उठे, पर अपने पेटकी उन्हें उतनी परवा नहीं थी जितनी कन्याके लिये थी। उसे वे भूखी-प्यासी नहीं देख सकते थे। इसलिये वे लोग फिर रास्ता चलने लगे। उसी भीषण आगकी लूहमें चलते हुए वे साँझ होते होते एक चट्टीमें आ पहुँचे। महेन्द्र मन-ही-मन बड़ी आशा किये हुए थे कि चट्टीमें पहुँचनेपर स्त्री-कन्याके मुँहमें ठंढा पानी और प्राण-रक्षाके लिये चार दाने अन्नके पहुँचा सकेंगे पर चट्टीमें तो आदमी-जनका कहीं पता ही नहीं है। बड़े बड़े घर हैं पर सब खाली पड़े हैं। आदमी सब भाग गये हैं। इधर-उधर देख-भाल-कर महेन्द्रने स्त्री कन्याको एक घरमें सुला दिया और आप बाहर आकर जोर-जोरसे आवाजें देने लगे। पर किसीने उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्रने कल्याणीसे कहा—"तुम जरा साहस करके थोड़ी देर अकेली बैठी रहो, मैं जरा देखूँ, कहीं भगवानकी दयासे गाय मिल जाय तो थोड़ा दूध दुह लाऊँ।" यह कहकर महेन्द्र वहींपर पड़ा एक छोटा-सा मिट्टीका घड़ा लिये बाहर निकले।

दूसरा परिच्छेद

महेन्द्रके चले जानेके बाद कल्याणी अकेली बैठी, कन्याको गोदमें लिये हुए उस जनशून्य अंधेरी कोठरीमें चारों तरफ दृष्टि दौड़ा रही थी उसके जी में बड़ा भय पैदा हो रहा था। कहीं कोई आदमी नहीं, किसी मनुष्यकी आहटतक नहीं मिलती, केवल स्यार-कुत्तोंका भूँकना सुनाई पड़ता था। वह मन-ही मन सोच रही थी—"मैंने क्यों इन्हें जाने दिया? थोड़ी देर और

भूख-प्यास सह लेती।" फिर विचारा कि चारों ओरके किवाड़ बंद कर दें, पर किसी दरवाजेमें किवाड़ नदारत थे, तो किसी किवाड़में सांकल ही नहीं थी। इसी तरह वह चारों ओर देख रही थी कि सामनेके दरवाजेपर एक छाया-सी दीख पड़ी। आकार प्रकार तो मनुष्यका-सा मालूम पड़ा, पर शायद वह मनुष्य नहीं था। अत्यंत दुबला-पतला, सूखी ठटरीवाला, काला, नंग-धड़ंग विकटाकार मनुष्य-सा न जाने कौन आकर दरवाजे-पर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद उस छायाने मानो अपना हाथ ऊपर उठाया और हड्डीचाम भर बचे हुए अपने लम्बे हाथकी लम्बी और सूखी उँगलियोंको घुमाकर किसीको संकेतसे अपने पास बुलाया। कल्याणीकी जान सूख गयी। इतनेमें एक और छाया उस छायाके पास आकर खड़ी हो गयी। यह छाया भी पहली हीकी तरह थी, इसी तरह एक-एक करके न जाने कितनी ही छायायें आ पहुँचीं! सब की सब चुपचाप आकर घरमें घुस गयीं, वह अंधकारमय गृह श्मशान-सा भयंकर मालूम पड़ने लगा। इसके बाद उन प्रेतमूर्तियोंने कल्याणी और उसकी कन्याको चारों ओरसे घेर लिया। कल्याणी मूर्च्छित हो गयी। तब उन कृष्णवर्ण शीर्ण आकारोंने कल्याणी और उसकी कन्याको उठाया और उन्हें लिये हुए घरसे बाहर हो मैदान पारकर एक जङ्गलमें घुस गये।

कुछ ही देर बाद महेन्द्र घड़ेमें दूध लिये हुए वहां आ पहुंचे। उन्होंने देखा कि कहीं कोई नहीं है। उन्होंने चारों ओर बहुत ढूंढ़ा, स्त्री और कन्याका नाम ले-लेकर बार-बार पुकारा, पर न तो किसीने उत्तर दिया, न किसीका पता चला।

तीसरा परिच्छेद

जिस जङ्गलमें डाकुओंने कल्याणीको ले जाकर जमीनपर रखा वह बड़ा मनोहर था। न तो वहाँ प्रकाश था और न ऐसे परखी ही थे जो वहाँकी शोभाको देख और समझ सकें। जिस तरह दरिद्रके हृदयके

सौन्दर्यका कोई मूल्य नहीं होता उसी तरह उस वनकी शोभा निरर्थक थी। देशमें खानेको अन्न हो वा न हो, पर वन विकसित था, जिसकी सुगन्धसे वह अन्धकार प्रकाशमय हो रहा था। वनके बीच एक साफ-सुथरे और सुकोमल पुष्पोंसे भरे हुए भूमिखण्डमें डाकुओंने कल्याणी और उसकी कन्याको ला रखा था। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये और आपसमें वाद-विवाद करने लगे कि उन दोनोंको क्या करना चाहिये। कल्याणीके शरीरपरके गहने तो उन्होंने पहले ही निकाल लिये थे। कुछ डाकू उन्हींका बँटवारा करनेमें लगे हुए थे। गहनोंका बँटवारा हो जानेपर एक डाकूने कहा—"भाई, हम सोना-चाँदी लेकर क्या करेंगे? एक गहना लेकर यदि कोई मुट्ठीभर चावल दे दे तो प्राण बचें। भूखके मारे जान निकली जा रही है। आज केवल पेड़के पत्ते खाकर रह गया हूँ।"—एकके मुँहसे यह निकलते ही सब भोजन-भोजन चिल्लाने लगे। "हमें सोना-चाँदी नहीं चाहिये, भूखसे प्राण निकले जा रहे हैं।" उनके सरदारने उन्हें समझा-बुझाकर चुप कराना चाहा, पर कोई चुप न हुआ, उलटे सब के-सब और जोरसे चिल्लाने और गाली बकने लगे। अन्तमें मारपीटकी नौबत आ पहुँची। जिन लोगोंको बँटवारेमें गहने मिले थे, उन्होंने क्रोधमें आकर गहनोंको सरदारके ऊपर जोरोंसे फेंक मारे। सरदारने भी एक-दोको खूब पीटा। तब सब मिलकर सरदारपर टूट पड़े और उसे मारने लगे। बेचारा सरदार भी कई दिनोंका भूखा था और कमजोर हो रहा था, इसलिये दो ही चार धौल-धप्पेमें उसका काम तमाम हो गया। तब भूखसे पीड़ित, क्रोधित, उत्तेजित और ज्ञानशून्य डाकुओंमेंसे एकने कहा—"भाइयो! भूखसे प्राण निकले जा रहे हैं। स्यार-कुत्तोंका मांस तो बहुत खाया, आओ आज इसी सालेका मांस खायें।" यह सुनते ही "जय काली मैयाकी" कहकर जोरसे चिल्ला उठे। "बम काली! आज मनुष्यका ही माँस उड़ने दो।" यह कहकर वे सब दुबली-पतली और प्रेत सदृश काली-काली मूर्तियां अन्धकारमें

खिल खिलाकर हँसने और ताली बजा-बजाकर नाचने लगीं। एकने सरदारकी लाश भुननेके लिये आग जलानेका उपाय करना आरम्भ किया। सूखी लतायें, लकड़ियाँ और तृण बटोरकर उसने चकमकसे आग पैदाकर उनकी ढेरमें आग लगा दी। आग धीरे-धीरे जलने लगी और उसके प्रकाशमें पासवाले आम, नीबू, कटहल, ताड़, खजूर और इमलीके पेड़ोंके हरे-हरे पत्ते चमकने लगे। कहीं तो पत्ते उजेलेमें चमक उठे, कहीं घासपर रोशनी पड़ने लगी और कहीं अन्धेरा और भी बढ़ गया। आग खूब धधक उठनेपर एकने लाशकी टांग पकड़ी और उसे आगमें डालनेके लिये ले चला। इतनेमें एक बोल उठा—'ठहर जा यार, ठहर जा। अगर आज नरमांस खाकर ही प्राण बचाने हैं, तो फिर इस बुड्ढेकी सूखी ठटरी जलाकर क्यों खायें ? लाओ, आज हम जिसे पकड़ लाये हैं, उसीको भुनकर खायें, इसी अल्पवयस्क बालिकाका मुलायम माँस ही खाकर प्राण बचायें।" दूसरेने कहा, "जो कुछ हो, जल्द भुन डालो, बाबा! अब तो भूख नहीं सही जाती!" सभीकी जीभसे लार टपक पड़ी और सब-के-सब उधर ही चले, जहाँ कल्याणी अपनी कन्याके साथ मूर्च्छित पड़ी थी। आकर सबोंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है, न मांका पता है, न बेटीका। डाकुओंको लड़ाई-झगड़ामें फँसा देख, सुयोग पाकर कल्याणी कन्याको गोदमें लेकर जंगलमें भाग गयी थी। शिकारको इस तरह हाथसे निकल गया देख, वे सब प्रेतमूर्त्ति डाकू "मारो! मारो!! पकड़ो! पकड़ो! कहते हुए चारों ओर दौड़ पड़े।

सच पूछो तो; अवस्थाविशेषमें मनुष्य भी हिंस्र जन्तु ही हो जाता है।

चौथा परिच्छेद

बनमें निविड़ अन्धेरा था, बेचारी कल्याणीको रास्ता नहीं सूझता था। एक तो वृक्षों, लताओं और कुश-कांटोंकी बहुतायतसे आप ही रास्ता छिप गया था, दूसरे निविड़ अन्धकार, कुश-कांटोंके बीचसे कल्याणी बनमें प्रवेश करने लगी। रह-रहकर लड़कीके बदनमें कांटे चुभ जाते थे इससे वह रो उठती थी। उसकी आवाज सुनकर डाकू और भी चिल्लाने लगे। इस प्रकार आहत शरीर बालिकाको लिये हुए कल्याणी बहुत दूरतक जंगलमें चली गयी। कुछ देर बाद चन्द्रमा निकल आये। अबतक तो कल्याणीको भरोसा था कि अन्धेरेमें डाकू उसे न देख सकेंगे, इधर-उधर ढूँढ़ खोजकर थक जायंगे, पर चन्द्रोदय हो जानेसे उसका यह भरोसा भी टूट गया। आसमानमें निकलते ही चन्द्रमाने जङ्गलके सिरपर प्रकाशकी वर्षा-सी कर दी, बनके भीतरवाले अन्धकारपर रोशनीके छींटेसे पड़ गये। अन्धकार भी उज्ज्वल हो गया। बीच-बीचमें थोड़ा छिद्र पाकर प्रकाश बनके भीतर प्रवेश करके झांकने लगा। चाँद जितना ही ऊपर उठने लगा, उतनी ही अधिक उँजियाली बनमें प्रवेश करने लगी। कल्याणी कन्याको लिये और भी घने जङ्गलमें छिपने लगी। डाकुओंने और भी अधिक चिल्लाहट और शोरगुलके साथ बनमें चारों ओर दौड़ना शुरू किया। लड़की डरके मारे और भी जोर-जोरसे रोने लगी। कल्याणीने लाचार हो भागनेका विचार छोड़ दिया। एक बड़े से पेड़के नीचे जहां हरी-हरी घास उगी थी और कुश काटे नहीं थे कन्याको गोदमें लिये वह बैठकर पुकार-पुकारकर कहने लगी—"हे भगवन्! तुम कहां हो! मधुसूदन! तुम्हें मैं नित्य पूजती और प्रणाम करती हूँ। तुम्हारे ही भरोसे मैं इस जङ्गलमें घुसी थी। बताओ तुम कहाँ हो?" इसी समय भय तथा भक्तिकी प्रगाढ़ता और

क्षुधा-तृष्णाकी मारसे वाह्य ज्ञान शून्य हो, आन्तरिक चैतन्यसे भरकर कल्याणीको आन्तरिक्षमें स्वर्गीय गान सुनाई देने लगा, मानो कोई गा रहा है

"हरे मुरारे, मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !
हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

कल्याणी लडकपनसे ही पुराणोंमें सुनती आयी थी कि देवर्षि नारद वीणा हाथमें लिये हरिनामका कीर्तन करते, गगनपथमें विचरण करते हुए भुवनभ्रमण किया करते हैं। यही कल्पना उसके मनमें जाग बैठी। उसे मालूम होने लगा मानो शुभ्र शरीर, शुभ्र केश, शुभ्र वसन, महा शरीर, महामुनि वीणा हाथमें लिये, चन्द्रलोकमें प्रदीप्त नीलाकाशमें गा रहे हैं।

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

क्रमशः गीत और पास सुनाई देने लगा। उसे साफ सुनाई दिया कि कोई गा रहा है 'हरे ! मुरारे !! मधुकैटभारे !!!"

क्रमशः गाना और भी निकट—और भी स्पष्ट मालूम पड़ने लगा; मानो कोई गाता है।

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

अन्तमें कल्याणीके सामने वनस्थलीसे भी उस गीतकी प्रतिध्वनि गूँज उठी—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

कल्याणीने आँखें खोलीं। उसने क्षीण प्रकाशमें देखा, कि वही शुभ्रशरीर, शुभ्र-केश, शुभ्र-वसन ऋषि-मूर्ति उसके सामने खड़ी है। अन्यमनस्क कल्याणीने श्रद्धा-भक्ति-युक्त उन्हें प्रणाम करना चाहा, पर प्रणाम न कर सकी। सिर झुकाते ही बेहोश होकर गिर पड़ी।

———

पांचवां परिच्छेद

उस वनके एक विस्तृत भागमें पत्थरोंके ढोंकोंसे घिरा हुआ एक बड़ा मठ था। उसे यदि कोई पुरातत्ववेत्ता देख पाये, तो यही कहेगा कि यह पहले बौद्धोंका 'विहार' रहा होगा, पीछे हिन्दुओंका मठ हो गया। अट्टालिका दोमञ्जिली है—बीचमें बहुतसे देव मन्दिर हैं, जिसके सामने नाट्यशाला बनी हुई है। मठके चारों तरफ दीवार खींची हुई है और बाहरसे जंगली वृक्षोंकी श्रेणी द्वारा ऐसा छिपा हुआ है कि पास जानेपर भी यह नहीं मालूम होता कि यहाँ पक्का मकान है। अट्टालिकाएँ जगह-जगहसे टूटी-फूटी थीं, परन्तु दिनको देखनेसे मालूम होता था कि उन सबकी हालमें ही मरम्मत हो गयी है। इससे प्रकट होता था कि इस गम्भीर और अभेद्य अरण्यमें मनुष्य वास करते हैं।

मठके एक कमरेमें बड़ी भारी धूनी जल रही थी, होशमें आकर कल्याणी ने देखा कि वही शुभ्र-शरीर, शुभ्र-वसन महापुरुष उसके सामने खड़े हैं। कल्याणी विस्मयसे उनकी ओर देखने लगी। पर बहुत सोचनेपर भी उसे कुछ स्मरण नहीं हो सका। यह देख उस महापुरुषने कहा—"बेटी! शंका न करो; यह देवताका स्थान है। थोड़ा दूध है, इसे पी लो, तब तुम्हें सब कथा सुनाऊँगा।"

पहले तो कल्याणी कुछ न समझ सकी, पर मन कुछ स्थिर हो जानेपर उसने उन महात्माको प्रणाम किया। महात्माने शुभ आशीर्वाद दिया। फिर दूसरे कमरेसे एक सुगन्धित मिट्टीका वर्तन लाया और आगपर दूध गरम किया। दूध गरम होनेपर उन्होंने कल्याणीको देकर कहा—"बेटी! थोड़ा तुम पीओ और थोड़ा लड़कीको भी पिलाओ, इसके बाद बातें करूँगा।" यह सुन कल्याणी प्रसन्न-मन कन्याको दूध पिलाने लगी। इसी समय वे महापुरुष यह कहकर मन्दिरसे बाहर

वे महापुरुष यह कहकर मन्दिरसे बाहर चले गये—"कि मैं जबतक नहीं आऊँ, किसी प्रकारकी चिन्ता मत करना।" कुछ देर बाद बाहरसे लौट आने पर उन्होंने देखा कि कल्याणी कन्याको तो दूध पिला चुकी है, पर अभी स्वयं नहीं पिया है। दूध ज्योंका-त्यों रखा हुआ है, यह देख उस महापुरुषने कहा—"बेटी! तुमने क्यों नहीं पिया? मैं बाहर जाता हूँ, जबतक तुम न पी लोगी, मैं न लौटूँगा।"

यह कहकर वे महापुरुष चले ही जा रहे थे कि कल्याणीने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

वनवासीने पूछा—"क्या कुछ कहोगी? कल्याणीने कहा—मुझे दूध पीनेके लिये अनुरोध न करें" एक आपत्ति है। "मैं दूध नहीं पी सकती।" यह सुन वनवासीने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—कौनसी आपत्ति है मुझसे कहो। मैं जङ्गलमें रहनेवाला ब्रह्मचारी हूँ। तुम मेरी लड़कीके बराबर हो। कहो मुझसे भी कहनेके लायक नहीं हो, ऐसी कौनसी बात है। जब मैं तुम्हें जङ्गलसे बेहोशीके हालतमें उठा लाया था, उस समय तुम बहुत भूखी प्यासी मालूम पड़ती थी। बिना कुछ खाये-पीये प्राण कैसे बचेंगे।"

कल्याणीने रोते-रोते कहा—"आप देवता हैं, इसीसे आपसे कहती हूँ। मेरे स्वामी अभीतक भूखे होंगे। बिना उनको देखे या उनके बिना खा-पी लेनेका संवाद पाये, मैं भला कैसे दूध पी सकती हूँ।"

ब्रह्मचारीने पूछा—"तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं?

कल्याणी—"यह मुझे नहीं मालूम! वे दूध लाने बाहर चले गये थे। उसी समय डाकू मुझे उठा लाये।" ब्रह्मचारीने एक-एक करके कल्याणी और उसके स्वामीका सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणी-ने अपने स्वामीका नाम नहीं बतलाया, क्योंकि वह उनका नाम मुँहसे नहीं निकाल सकती थी, परन्तु ब्रह्मचारीने अन्य बातोंसे सब कुछ समझ लिया, पूछा—"क्या तुम्हीं महेन्द्रकी स्त्री हो?" कल्याणीने

कुछ जवाब नहीं दिया। केवल सिर झुकाये हुए वह आगमें लकड़ी उठाकर डालने लगी। ब्रह्मचारीने कहा—"मेरी बात मानो, दूध पीलो। मैं तुम्हारे स्वामीका समाचार लाने जाता हूँ। तुम दूध न पीओगी तो मैं जाऊँगा ही नहीं।"

कल्याणीने कहा—"थोड़ा-सा पानी मिलेगा ?"

ब्रह्मचारीने जलके घड़ेकी ओर इशारा किया, कल्याणीने हाथ फैलाया, ब्रह्मचारीने पानी ढाल दिया। जलसे भरी हुई अंजलि ब्रह्मचारीके पैरोंके पास ले जाकर कल्याणीने कहा—"आप इसमें अपनी पदरज दे दीजिये।" ब्रह्मचारीने अपने पैरके अंगूठेसे उस जलको स्पर्श कर दिया। बस, कल्याणी उसे पी गयी और बोली—"मैंने अमृत पान कर लिया, अब और कुछ खाने-पीनेको न कहिये। स्वामीका सम्वाद पाये बिना मुझसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया जायगा।

ब्रह्मचारीने कहा—"अच्छा तुम निर्भय होकर इस देवमन्दिरमें बैठी रहो—मैं तुम्हारे स्वामीका पता लगाने जाता हूँ।"

छठां परिच्छेद

रात बहुत बीत गयी है। चन्द्रदेव मध्य आकाशमें आ गये हैं। आज पूर्णमासी नहीं है। इससे प्रकाश तेज नहीं है। एक अत्यन्त विस्तीर्ण मैदानके ऊपर उस अन्धकारकी छायासे युक्त धुन्धली रोशनी पड़ रही है। उस रोशनीमें मैदानका आरपार नहीं दिखाई देता। मैदानमें क्या है, कौन है, नहीं मालूम पड़ता। सारा मैदान अनन्त, जन-शून्य और डरावना मालूम पड़ रहा है। रास्तेके किनारे एक छोटी-सी पहाड़ी है, जिसपर आम आदिके बहुतसे पेड़ लगे हैं। पेड़ोंकी पत्तियाँ चांदनीमें चमकती हुई हिल रही हैं; उनकी छाया काले पत्थरपर पड़कर और भी काली हो गयी है और लगातार काँपती

मालूम पड़ती है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ीके शिखरपर चढ़कर चुप-चाप खड़े हो न जाने क्या सुनने लगे—किस चीजकी आहट लेने लगे, नहीं कहा जा सकता। उस अनन्त प्रान्तमें कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था, केवल वृक्षोंके पत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनाई पड़ती थी। पहाड़ीके नीचे ही घना जङ्गल था।

ऊपर पहाड़ी नीचे राजपथ और बीचमें जङ्गल था। वहींपर न जाने कैसा शब्द हुआ; सो तो हमें नहीं मालूम पर हाँ ब्रह्मचारी उसीकी सीधपर चल पड़े। घने जङ्गलमें प्रवेशकर उन्होंने देखा कि उस जङ्गल-के पेड़ोंके नीचे अंधेरेमें ही बहुतसे आदमी कतार बाँधे बैठे हुए हैं। वे सभी लम्बे तगड़े, काले-काले और हथियारबन्द थे। पत्तोंके बीचसे छनकर आनेवाली रोशनी उनके पैने हथियारोंपर पड़ रही थी, जिससे वे खूब चमक रहे थे। इसी प्रकार दो सौ आदमी वहाँ जमा थे पर किसीके मुँहसे बोली नहीं निकलती थी। धीरे-धीरे उनके पास पहुँचकर ब्रह्मचारीने न जाने किस बातका इशारा किया पर न तो कोई बोला, न कोई कुछ हिला डुला। वे सबके सामनेसे हर एकको देखते हुए निकल गये, अन्धेरेमें हरएकका चेहरा बड़े गौरसे देखते हुए चले, पर शायद वे जिसे खोज रहे थे उसे न पा सके। खोजते—खोजते एकको पहचानकर उन्होंने उसका अंग स्पर्शकर कुछ इशारा किया। इशारा करते ही उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे दूर ले जाकर खड़े हुए। वह आदमी नौजवान था। काली काली दाढ़ी-मूछोंसे उसका चांद-सा चेहरा छिपा हुआ था। वह बड़ा बलिष्ठ और अति सुन्दर पुरुष मालूम पड़ता था। गेरुआ वस्त्र पहिने था और सारी देहमें चन्दन लगाये हुए था। ब्रह्मचारीने उससे कहा—"भवानन्द! क्या तुम महेन्द्रसिंहका कुछ पता-ठिकाना जानते हो।"

यह सुन भवानन्दने कहा—"महेन्द्रसिंह आज सवेरे स्त्री—कन्याके साथ घर छोड़कर जा रहे थे। रास्तेमें एक चट्टीमें—"

इतना सुनते ही ब्रह्मचारी बीचही में बोल उठे—"चट्टीमें जो हुआ, मुझे मालूम है, पर यह तो कहो किसकी कारवाई थी?"

भवानन्द—"गांवके नीच जातियोंका काम है और क्या? इस समय सभी गांवोंकी नीच जातियाँ पेटकी मारसे डाकू बन गयी हैं। आजकल कौन डाकू नहीं हो रहा है? आज हमलोगोंने ही लूटकर अन्न पाया है, कोतवाल साहबके लिये दो मन चावल जा रहा था, हम लोगोंने उसे लूटकर वैष्णवोंको खिला दिया।"

ब्रह्मचारीने हँसकर कहा—"मैंने चोरोंके हाथसे उसकी स्त्री कन्या-को तो बचा लिया है और इस समय उन्हें मठमें ही रख छोड़ा है। अब मैं तुम्हारे ऊपर इसका भार सौंपता हूं कि महेन्द्रको ढूँढ़ निकालो और उसकी स्त्री-कन्याको उसके हवाले कर दो।" यहाँ जीवानन्द ही रहें तो यहाँका सारा काम चलाया जा सकता है।

भवानन्दने स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारी दूसरी तरफ चले गये।

सातवां परिच्छेद

चट्टीमें बैठे-बैठे केवल सोच-विचार करते रहनेसे कोई नतीजा न निकलेगा, यही सोचकर महेन्द्र वहाँसे उठ 'शहरमें जाकर सरकारी अमलोंकी सहायतासे स्त्री-कन्याको पता लगा लूँगा' यही सोचकर उधर ही चल पड़े। कुछ दूर चलकर उन्होंने देखा कि बहुतसे सिपाही अनेक बैलगाड़ियोंको घेरे हुए चले जा रहे हैं।

११७६ सालमें बङ्गाल प्रांत अंग्रेजोंके शासनाधिकारमें नहीं आया था। उस समयतक अंग्रेजोंके हाथमें यहाँकी दीवानी ही थी। ये लोग मालगुजारी वसूल करते थे सही पर उस समयतक बङ्गालियोंके जानोमालके रक्षक नहीं बने थे। उन दिनों लगान वसूल करना तो अंग्रेजोंके हाथमें था और प्रजाके प्राण और सम्पत्तिकी रक्षाका भार था पापी, नराधम, विश्वास-घाती और मनुष्यकुल-कलंक मीरजाफरके

हाथमें। पर मीरजाफर तो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता था, सारे बंगालकी रक्षा वह क्या करता ? मीरजाफर अफीम खाकर पिनक लिया करता और अंगरेज लोग रुपये वसूलकर विलायतको खाते लिख-लिखकर भेजा करते। बंगाली मरें, चाहे आठ-आठ आँसू रोया करें, इसकी किसे चिन्ता थी।

अतएव बङ्गालकी मालगुजारी अंगरेजोंको ही देनी पड़ती थी, किन्तु शासनका भार नवाबपर था। जहाँ-जहाँ अंगरेज लोगोंको अपनी मालगुजारी वसूल करनी पड़ती थी वहाँ-वहाँ उन्होंने अपना एक कलेक्टर मुकर्रर कर दिया था। मालगुजारी वसूल करके कलकत्ते भेज दी जाती थी। लोग भले ही खाये बिना मरें, पर मालगुजारी कभी बन्द नहीं होती थी, पर अब वसूलीमें कमी पड़ने लगी, क्योंकि माता वसुमती धन न दें तो कोई गढ़कर थोड़े ला सकता था ?

इस बार जो कुछ वसूल हुआ था, वही बैलगाड़ीपर लादकर सिपाहियोंके पहरेमें कलकत्ते कम्पनीके खजानेमें जमा करनेके लिये भेजा जा रहा था। आजकल डाकुओंका उपद्रव जोरोंपर है, यही सोचकर पचास हथियारबन्द सिपाही खुली संगीनें लिये गाड़ीके आगे-पीछे चले जा रहे थे। उनका अफसर एक गोरा था। गोरा सबके पीछे घोड़ेपर सवार था। धूपके मारे सिपाही दिनको रास्ता नहीं चलते, इसलिये वे लोग रातको चले जा रहे थे। उन्हीं गाड़ियों और सिपाहियोंको महेन्द्रने देखा था। सिपाहियों और बैलगाड़ियोंसे रास्ता रुका देख, महेन्द्र हटकर बगलमें खड़े हो गये। तो भी सिपाहियोंने एकाध धक्का दे ही दिया। यह सोचकर कि यह समय इनसे वाद-विवाद करनेका नहीं है, महेन्द्र रास्तेके उस ओर, जिधर जंगल था, जाकर खड़े हो गये।

यह देख एक सिपाहीने कहा—"देखो, देखो, एक डाकू भागा जा रहा है।"

महेन्द्रके हाथमें बन्दूक देख, उसका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया। वह झटपट दौड़ा हुआ महेन्द्रके पास गया और उनका गला धर दबाया। इसके बाद "साला चोर-बदमाश कहींका" कहता हुआ उसने उनको जोरसे एक घूँसा जमाया और उनके हाथसे बन्दूक छीन ली। महेन्द्रने खाली हाथ हो जानेपर भी उसे उलटकर एक घूँसा रसीद किया। उसकी मारसे सिपाहीका सिर घूम गया और चक्कर खाकर बेहोश हो रास्तेमें गिर पड़ा। यह देख, तीन-चार सिपाहियोंने महेन्द्रको पकड़ लिया और उन्हें घसीटते हुए सेनापति साहबके पास ले गये— बोले, इस आदमीने एक सिपाहीका खून कर डाला है। साहब चुरुट पी रहे थे, शराबका भी तेज नशा चढ़ा हुआ था, झट बोल उठे— "सालेको पकड़ ले चलो, इससे शादी कर लेना।" बेचारे सिपाहियोंकी समझमें न आया कि वे इस बन्दूकधारी डाकूसे किस प्रकार विवाह करेंगे। पर नशा टूटनेपर साहबका मत बदल जायगा और वे हमसे फिर न कहेंगे कि इससे सादी करलो—यही सोचकर तीन-चार सिपाहियोंने रस्सेसे उनके हाथ पैर बाँध दिये और एक गाड़ीपर लाद दिया। महेन्द्रने देखा कि इतने लोगोंके साथ जोर आजमायश करना बेकार है। लड़भिड़कर छुटकारा पानेसे ही क्या लाभ है? स्त्री-कन्याके शोकसे महेन्द्र इतने कातर हो रहे थे कि उन्हें जीनेकी इच्छा ही नहीं रह गयी थी। सिपाहियोंने महेन्द्रको भलीभाँति गाड़ीके पहियेके पासवाले बाँसमें बाँध दिया। इसके बाद वे पहलेकी तरह सरकारी खजाना लिए हुए धीरे-धीरे आगे बढ़े।

———

आठवां परिच्छेद

—— ❀ ——
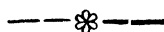
ब्रह्मचारीकी आज्ञा पा भवानन्द मृदु स्वरसे हरिनाम लेते हुए उसी चट्टी की ओर चले, जिसमें महेन्द्रने डेरा किया था। उन्होंने सोचा कि महेन्द्रका पता वहीं जानेसे लग सकता है।

उन दिनों आजकलकी-सी सड़कें नहीं थीं। छोटे-मोटे शहरोंसे कल-कत्ते जाते समय मुसलमान बादशाहोंकी बनवाई हुई विचित्र सड़कोंसे ही जाना पड़ता था। महेन्द्र भी पद-चिह्नसे नगर जाते समय, दक्षिणसे उत्तरकी ओर चले जा रहे थे। इसीलिये उनकी सिपाहियोंसे मुठभेड़ हो गयी थी। भवानन्द ताल पहाड़परसे जिस चट्टीकी ओर चले वह भी दक्षिणसे उत्तरकी ओर थी। इसलिये कुछ ही दूर जाकर उनका सिपा-हियोंसे मुकाबला हो गया, उन्होंने भी महेन्द्रकी ही तरह सिपाहियोंको रास्ता दे दिया। एक तो सिपाहियोंको सहज ही इसका अन्देशा था कि डाकू खजानेको लूटनेकी अवश्य ही चेष्टा करेंगे। दूसरे रास्तेमें उन्होंने एक डाकूको गिरफ्तार भी कर लिया था, इसीसे भवानन्दको फिर इस रातके समय किनारा काटकर जाते देखा उनको पूरा विश्वास हो गया कि यह भी कोई डाकू ही है। फिर क्या था! सिपाहियोंने उन्हें झट गिरफ्तार कर लिया।

भवानन्दने धीरेसे मुसकुराकर कहा—क्यों भाई! मुझे क्यों पक-ड़ते हो?"

एक सिपाहीने कहा—"तू साला, डाकू है।"

भवानन्द—"देखते नहीं हो, मैं गेरुआधारी ब्रह्मचारी हूँ। क्या डाकू ऐसे ही होते हैं?"

सिपाही—"बहुतेरे ससुरे साधु-संन्यासी चोरी-डकैती करते हैं" यह कह, सिपाहीने भवानन्दको, गर्दनमें हाथ डाल, धक्का देकर अपनी ओर खींचा। भवानन्दकी आँखें क्रोधके मारे लाल हो गयीं, पर वे और कुछ न कहकर अत्यन्त विनीत भावसे बोले—"प्रभो, आज्ञा दीजिये मुझे क्या करना होगा।"

भवानन्दकी विनयसे सन्तुष्ट हो सिपाहीने कहा—"ले चल साला, यह गठरी सिरपर उठा ले।" यह कहकर उसने भवानन्दके सिरपर एक गठरी रख दी। यह देख एक दूसरे सिपाहीने कहा—"नहीं यार, ऐसा न करो। साला भाग जायगा। पहलेको जहाँ बाँध रखा है, इसको भी वहाँ बाँध दो।" यह सुन भवानन्दको बड़ा कौतूहल हुआ कि देखें इन सबने किसे कहाँ बांध रखा है। यह सोचकर भवानन्दने सिरकी गठरी नीचे फेंक दी और जिस सिपाहीने उसके सिरपर गठरी रखी थी; उसके गालमें जोरसे चपत मारी। इसपर बिगड़कर सिपाहियोंने भवानन्दको बाँधकर महेन्द्रके पास ही ला पटका। भवानन्द देखते ही पहचान गया कि यही महेन्द्र सिंह हैं।

सिपाही लोग फिर बेफिक्रीके साथ शोर-गुल मचाते हुए जाने लगे। गाड़ियाँ चूर्र-मूर्र करती हुई चलने लगीं! तब भवानन्दने धीमे स्वरमें, जिसे सिवा महेन्द्रके और कोई न सुन सके कहा—"महेन्द्रसिंह मैं तुझे; पहचानता हूँ और तुम्हारी ही सहायताके लिये यहाँ आया हूँ। मैं कौन हूँ, यह तुम अभी सुनकर क्या करोगे? मैं जो कुछ कहूँ, उसे सावधानीसे करो, तुम अपने बँधे हाथका बन्धन गाड़ीके पहियेपर रखो।"

महेन्द्र बड़े अचम्भेमें पड़े, पर बिना कुछ कहे भवानन्दके कहे मुताबिक काम करनेको तैयार हो गये। अन्धेरेमें खिसकते हुए वे गाड़ीके पहियेके पास गये और जिस रस्सीसे उनके हाथ बधे हुए थे उसे पहियेपर रख दिया। पहियेकी रगड़से, रस्सी धीरे-धीरे कट गयी। इस तरह उन्होंने पैरोंका बन्धन भी काट डाला। इस प्रकार बन्धनसे मुक्त होकर

वे भवानन्दके परामर्शके अनुसार चुपचाप गाड़ीपर पड़े रहे। भवानन्दने भी उसीप्रकार अपने हाथ पैर बन्धन काट डाले। दोनों चुप्पी साधे रहे।

जङ्गलके पास राजपथपर जहाँ खड़े होकर ब्रह्मचारीने चारो ओर देखा था, उसी रास्तेसे होकर इन लोगोंको जाना था। सिपाहियोंने उस पहाड़ीके पास पहुँचकर देखा कि एक टीलेपर एक आदमी खड़ा है। नीचे आकाशमें प्रदीप्त चन्द्रमाके प्रकाशमें प्रकाशमान उसका काला शरीर देख हवलदारने कहा—"यार! वह देख एक साला और भी है, पकड़ लाओ। गठरी ढोयेगा।" यह सुन एक सिपाही उसे पकड़ने चला, पर वह आदमी ज्योंका-त्यों खड़ा रहा, जरा भी हिला-डुला नहीं। सिपाहीने उसे जाकर पकड़ लिया। वह कुछ न बोला। उसे पकड़कर वह हवलदारके पास ले गया, तो भी वह कुछ न बोला। हवलदारने कहा, इसके सिरपर गठरी रख दो। सिपाहीने उसके सिरपर गठरी रख दी। उसने चुपचाप माथेपर गठरी रख ली। इसके बाद हवलदार पीछे फिरा और गाड़ीके साथ चला। इसी समय यकायक पिस्तौलकी आवाज आयी। हवलदारकी खोपड़ीमें गोली लगी और वह जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। "इसी सालेने हवलदार को गोली मारी है" यह कहकर उस सिपाहीने उस मजदूरका हाथ पकड़ लिया। मजदूरके हाथमें उस समय भी पिस्तौल मौजूद थी, उसने झट सिरकी गठरी नीचे फेंक पिस्तौलका घोड़ा दबाकर दनसे फायर की। सिपाहीका शिर छिद गया। उसने उसका हाथ छोड़ दिया, इसी समय "हरि! हरि! हरि" का शब्द करते हुए दो सौ हथियारबन्द जवानोंने वहाँ आकर सिपाहियोंको घेर लिया। उस समय वे बेचारे सिपाही साहबके आनेकी राह देख रहे थे। साहबने यह सोचकर कि डाकुओंने छापा मारा है, सिपाहियोंको हुक्म दिया कि गाड़ियोंको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो जाओ। विपत्तिके समय अंग्रेजोंका नशा टूट जाता है। सिपाही चारों ओरसे गाड़ीको घेरकर

हथियार लिये हुए सामने की ओर मुँह किये खड़े हो रहे। सेनापतिके दूसरी बार हुक्म देते ही उन लोगोंने अपनी अपनी बन्दूकें सीधी कीं। इसी समय न जाने किसने साहबकी कमरसे उनकी तलवार निकाल ली। तलवार लेकर उसने झटपट उनका सिर काट लिया। साहबका सिर कटकर धड़से अलग हो गया और वे फायर करनेका हुकम न दे सके। सबोंने देखा कि एक आदमी बैलगाड़ीपर तलवार लिये खड़ा है और "हरि! हरि! हरि!" कहता हुआ सिपाहियोंको मार डालनेका हुक्म दे रहा है। वह आदमी भवानन्द थे।

सहसा सेनापतिका सिर कटते देख और आत्मरक्षाकी आशा किसी से न पाकर सिपाही कुछ देरतक भौंचकसे चुप खड़े रह गये। इसी समय तेजस्वी डाकुओंने उनमेंसे कितनोंको मार गिराया और कितनों ही को घायल कर डाला। इसके बाद गाड़ियोंके पास आ, उनपर जो रुपयेके बक्स लदे थे उनपर अधिकार कर लिया। सिपाही हारसे हताश होकर भाग गये।

तब वे व्यक्ति, जो टीलेके ऊपर खड़ा था और अन्तमें जिसने इस युद्ध का नेतृत्व ग्रहण कर लिया था, भवानन्दके पास आकर उसके गलेसे लिपट गया। दोनों खूब गले-गले मिले। भवानन्दने कहा, भाई जीवानन्द! तुम्हारा व्रत सार्थक हुआ।

जीवानन्दने कहा—"भवानन्द, तुम्हारा नाम सार्थक हो।"

इसके बाद लूटकी रकमको यथास्थान पहुँचानेका भार जीवानन्दको सौंपा गया। वे अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र ही वहांसे अन्यत्र चले गये। भवानन्द अकेले रह गये।

नवां परिच्छेद

गाड़ीसे नीचे उतरकर महेन्द्रने एक सिपाहीका हथियार छीन लिया और युद्ध करने ही जा रहे थे कि यकायक उन्हें यह ख्याल हो

आया कि ये लोग डाकू हैं और इन्होंने रुपये लूटनेके लिए ही इन सिपाहियोंपर आक्रमण किया है। यही सोचकर वे युद्धभूमि से हटकर अलग जा खड़े हुए, क्योंकि डाकुओंका साथ देनेसे उन्हें भी उनके पापका भागी बनना पड़ता। यह सोचकर वे तलवार फेंक चले ही जा रहे थे कि इसी समय भवानन्द उनके सामने आ खड़े हुए। महेन्द्रने पूछा--"महाशय! आप कौन हैं?"

भवानन्दने कहा—"यह जानकर तुम क्या करोगे?"

महेन्द्र—"मुझे जानना जरूरी है; क्योंकि आज आपने मेरा बड़ा उपकार किया है।"

भवानन्द--"इस बातका ज्ञान भी तुम्हें है, ऐसा तो मैं नहीं समझता; क्योंकि तुम युद्धके समय तलवार हाथमें रहते हुए भी दूर ही खड़े रह गये। जमींदारके लड़के ऐसे ही होते हैं। दूध घी खानेमें तो वे बड़ी बहादुरी दिखलाते हैं, पर समरभूमि मा दुर्लभ प्राण!"

भवानन्दकी बात पूरी होते न होते महेन्द्रने घृणासे कहा--"राम! राम! यह भी कोई काम है। डकैती बड़ा बुरा काम है!"

भवानन्दने कहा--"डकैती ही सही, पर तुम्हारा तो हमने उपकार ही किया है? अभी हम तुम्हारी और भी कुछ भलाई करना चाहते हैं।"

महेन्द्र--"तुम लोगोंने मेरा कुछ उपकार किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर अब और कौन उपकार करोगे? डाकुओंसे उपकार होनेकी अपेक्षा न होना ही अच्छा है।"

भवानन्द—"उपकार ग्रहण करना न करना तो तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। खैर, यदि अपनी कुछ भलाई हमारे हाथों चाहते हो तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी स्त्री-कन्यासे मिला दूँगा।"

महेन्द्र घूमकर खड़े हो गये और बोले—"क्या कहा?"

भवानन्द इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना ही चल पड़े। लाचार

महेन्द्र भी उनके पीछे हो लिये। वे मन-ही-मन सोचते जाते थे, "ये तो अजीब तरहके डाकू हैं!"

दसवां परिच्छेद

उस चाँदनी रातमें दोनों व्यक्ति उस निस्तब्ध मैदानको पारकर चले। महेन्द्र चुप थे। उनके मनमें शोक, गर्व, कौतूहलकी लहर उठ रही थी।

सहसा भवानन्दने अपना वेश बदला। अब भवानन्द शान्त और धीर प्रकृति संन्यासी न रहे, वह रण निपुण वीर, वह सेनापतिका सिर काटनेवाले योद्धा न रहे। अभी जिसने पूर्ण अभिमानसे महेन्द्रका तिरस्कार किया था, वह न रहे। उस ज्योत्स्नामयी, प्रशान्त पृथ्वीके गिरि, कानन और नदीकी शोभा देख, उनके मनमें उमङ्ग पैदा हो गयी, मानों चन्द्रमाको उदय होते देख, समुद्र खिलखिला उठा। भवानन्दके मुखपर प्रसन्नताकी गहरी रेखा छा गयी, मीठी मीठी बातें करनेके लिये उनका जी व्याकुल हो उठा। भवानन्दने बातचीत करने- [illegible] चेष्टा की, पर महेन्द्र न बोले। लाचार भवानन्द आप ही-आप [illegible] ने—

बन्दौं भारतभूमि सुहावन।
सजल सफल श्यामल थल सुन्दर,
मलय समीर चलय मन-भावन॥

महेन्द्र गीत सुनकर बहुत विस्मित हुए। वे यह न समझ सके कि यह सजल श्यामल थल सुन्दर मलय समीर चलय मन भावन आदि गुणोंसे युक्त माता कौन है। उन्होंने पूछा—"यह माता कौन है?" पर भवानन्द इसका उत्तर न दे गाते चले गये।

हिमकर निकर प्रकाशित रजनी
कुसुमित लता ललित छविवारी॥

दिनमनि उदित मुदित मन पक्षी ।
विकसित कमल नयन सुखकारी ॥

महेंन्द्रने कहा—"यह देश है, मां नहीं।"

भवानन्द बोले—"हमलोग अन्य कोई माता नहीं जानते। 'जननी-जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' जन्मभूमि ही हमारी माता है। हमारे मा, नहीं, पिता नहीं, बन्धु नहीं, कलत्र नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं हमारी तो बस वही 'सजल सफल श्यामल थल सुन्दर मलय समीर चलय मनभावन आदि गुणोंसे युक्त' सब कुछ है।"

भवानन्दके भावको समझकर महेंन्द्रने कहा—"अच्छा, तो एक बार गाओ।"

भवानन्दने फिर गाना आरम्भ किया :—

बन्दौं भारतभूमि सुहावन।
सजल सफल श्यामल थल सुन्दर,
मलय समीर चलय मन-भावन।
हिमकर निकर प्रकाशित रजनी,
कुमुसित लता ललित छविवारी।
दिनमनि उदित मुदित मन पक्षी,
विकसित कमल नयन सुखकारी।
तीस कोटि सुत जाके गंजित,
दुगुन करन करवाल उठाये।
कौन कहत तोहि अबला जननी,
प्रबल प्रताप चहूँ दिसि छाये॥
धर्म्म कर्म्म अरु मर्म्म तुही है,
शक्ति मुक्ति देनी जय करनी।
तू जननी आराध्य हमारी,
बहुबल धारिनि रिपुदल दमनी॥

तू दुर्गा दश आयुध धारिनि,
तू ही अमला कमल-विहारिनि।
सुखदा, वरदा, अतुला, अमला,
बानी-विद्या-दायिनि, तारिनि॥
सुस्मिति, सरला, भूषित विमला,
धरनी, भरनी, जननी, पावनि।
"जगन्नाथ" कर जोरे बन्दत,
जय जय भारतभूमि सुहाविनि॥

महेन्द्रने देखा कि डाकू गाते-गाते रोने लगा। महेंन्द्रने विस्मित होकर पूछा—"भाई आप लोग कौन हैं?"

भवानन्द—"हमलोग संतान हैं।"

महेंद्र—"संतान क्या? किसकी संतान हैं?"

भवानन्द—"माँकी संतान।"

महेंद्र—"अच्छा तो संतानका काम चोरी-डकैती करके माकी पूजा करना है? यह कैसी मातृ-भक्ति है?"

भवा०—"हमलोग चोरी-डकैती नहीं करते।"

महेंद्र—"अभी तो तुम लोगोंने भरी गाड़ी लूट ली है।"

भवानन्द—"यह चोरी-डकैती थोड़े ही है? हमने किसका धन लूटा है?"

महेंद्र—"क्यों? राजाका।"

भवानन्द—राजाका? यह लेनेका उसे क्या अधिकार है?"

महेंद्र—"वह राजकर था।"

भवानन्द—"जो राजा प्रजाका पालन नहीं करता वह राजा कैसा?"

महेंद्र—"देखता हूँ तुमलोग किसी दिन सिपाहियोंकी तोपके सामने खड़े करके उड़ा दिये जाओगे।"

भवा०—"बहुत ससुरे सिपाहियोंको हम देख चुके हैं। आज भी तो कितने ही थे।"

महेंद्र—"अभीतक पूरी तरह पाला नहीं पड़ा है, जिस दिन पड़ जायगा, उस दिन छठीका दूध याद आ जायेगा।"

भवा०—"अच्छी बात है, मरना तो एक दिन है ही, दो बार तो मरेंगे ही नहीं।

महेंद्र—"फिर जान-बूझकर जान देनेसे क्या लाभ?"

भवा०—"महेंद्रसिंह! तुम्हें देखकर मैंने समझा था, कि तुममें भी कुछ मनुष्यत्व है, पर अब मालूम हुआ कि जैसे सब हैं वैसे ही तुम भी हो! तुम केवल पेट पालनेके लिये ही पैदा हुए हो। देखो, साँप पेटके बल रेंगता है उससे घटकर नीच जीव हो और कोई नहीं है। पर पैर तले दब जानेपर वह भी फन काढ़कर खड़ा हो जाता है। पर क्या तुम्हारा धैर्य अब भी नष्ट नहीं हुआ? क्या मगध, मिथिला, काशी, कांची, दिल्ली, काश्मीर—किसी देशकी ऐसी दुर्दशा हो रही है? क्या इनमेंसे एक भी देशके निवासी दाने-दानेको तरसते हुए घास, पत्ते, जंगली लताएँ, सियार कुत्तेके मांस और आदमी तककी लाश खानेको मजबूर हो रहे हैं? किस देशमें प्रजाको द्रव्य रखनेमें भी कल्याण नहीं है? देवताकी उपासना करनेमें भी कल्याण नहीं है? घरमें बहू-बेटियोंको रखनेमें कल्याण नहीं है? बहूबेटियोंके गर्भ धारण करनेमें कल्याण नहीं। उनके पेट चीरकर लड़के निकाल लिये जाते हैं। सब देशोंके राजा प्रजाका पालन करते हैं, परन्तु हमारे मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा करते हैं? धर्म गया, जाति गयी, मान गया और अब प्राण भी जाया चाहते हैं। इन नशाखोरोंको भगाये बिना हिन्दुओंकी हिन्दुआई अब नहीं रह सकती।"

महेंद्र—"कैसे भगाओगे?"

भवा०—"मार भगावेंगे?"

महेंद्र—"तुम क्या अकेले ही थप्पड़ मारकर भगा दोगे ?"

डाकूने फिर गाया—

तीस कोटि सुत जाके गर्जित
दुगुन करन करवाल उठाये,
कौन कहत तोहि अबला जननी,
प्रबल प्रताप चहूँ दिशि छाये।

महेंद्र—"पर मैं तो देखता हूँ, तुम अकेले हो।"

भवा०—क्यों ? अभी तो तुमने दो सौ आदमी देखे हैं ?"

महेंद्र—"क्या वे सभी सन्तान ही हैं ?"

भवा०—"हां, सब-के-सब सन्तान ही हैं।"

महेंद्र—"और कितने लोग हैं।"

भवा०—"ऐसे हजारों हैं। धीरे-धीरे और भी हो जायँगे।"

महेन्द्र—"मान लिया कि, दस-बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, तो क्या होगा ? क्या इसीसे मुसलमानों को मार भगाओगे ?"

भवा०—"पलासीमें अंग्रेजोंके पास कितनी फौज थी ?"

महेंद्र—अंग्रेजों और बंगालियोंकी क्या तुलना ?"

भवा०—"क्यों नहीं ? देहके जोरसे क्या होता है ? देहमें अधिक जोर होनेसे क्या अधिक गोली चलायी जा सकती है ?"

महेंद्र—फिर मुसलमानों और अंग्रेजोंमें इतना फर्क क्यों ?"

भवा०—"देखो, अंग्रेज प्राण जानेपर भी मैदानसे नहीं भागते और मुसलमान देहमें आँच लगते ही भाग जाते हैं, शरबत पानीकी धुनमें लग जाते हैं। इसके सिवा अंग्रेजोंमें दृढ़ता होती है, वे जिस कामको उठा लेते हैं उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ते। पर मुसलमान महा आलसी हैं। बेचारे सिपाही रुपयेके लिये प्राण देते हैं फिर भी बेचारोंको ठीक-ठीक वेतन नहीं मिलता। इसके सिवाय साहस चाहिये। तोपका गोला एक जगह छोड़कर दस जगह तो गिरेगा नहीं, फिर एक

गोलेके डरसे दश आदमियोंके भागनेका क्या काम है ? पर एक ऐसा गोला छूटते ही दलके दल मुसलमान भाग खड़े होते हैं। इधर सैकड़ों गोले देखकर भी अंग्रेजका बच्चा नहीं भागता।"

महेंद्र--"तो क्या तुम लोगोंमें ये सब गुण मौजूद हैं ?"

भवा०—"नहीं पर गुण किसी पेड़में फलते नहीं; अभ्यास करनेसे ही आते हैं।"

महेन्द्र—"क्या तुम लोग अभ्यास कर रहे हो ?"

भवा०—"देखते नहीं, हमसब संन्यासी हैं ? इसी अभ्यासके लिये हमलोगोंने संन्यास ग्रहण किया है। काम पूरा होनेपर अभ्यास भी पूरा हो जायगा और हम लोग फिर गृहस्थ हो जायँगे। हमारे भी पुत्र-कलत्र हैं।"

महेन्द्र—"तुम लोग तो इस बन्धनसे मुक्त होकर मायाका जाल काट चुके हो ?"

भवा०—"सन्तानको झूठ नहीं बोलना चाहिये। मैं तुम्हारे सामने झूठी बड़ाई न करूँगा। मायाका जाल कौन काट सकता है ? जो यह कहता है कि मैंने मायाका फन्दा काट दिया है, उसे या तो माया व्यापी ही नहीं, अथवा वह बड़ा झूठा है; व्यर्थकी डींग मारता है। हम लोगोंने मायाका फन्दा नहीं काटा है, केवल व्रतकी रक्षा कर रहे हैं। क्या तुम भी सन्तान होना चाहते हो ?"

महेन्द्र—"बिना स्त्री-कन्याका संवाद पाये मैं कुछ नहीं कह सकता।"

भवा०—"चलो, तुम्हारी स्त्री-कन्यासे मुलाकात करा दूँ।"

इतना कह दोनों चल पड़े। भवानन्द फिर "वन्देमातरम्" गाने लगे। महेन्द्रका गला बड़ा सुरीला था, संगीत विद्यामें कुछ अनुराग भी था, अतएव वे भी साथ-ही-साथ गाने लगे। उन्होंने देखा कि गाते-गाते आँखें आप-ही-आप भर आती हैं। महेन्द्रने कहा—"यदि स्त्री कन्याको न छोड़ना पड़े तो मुझे भी यह व्रत ग्रहण कराओ।"

भवा०—"जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे स्त्री-कन्या छोड़ देनी पड़ती है। यदि तुम यह व्रत ग्रहण करोगे, तो स्त्री-कन्यासे न मिल सकोगे। हाँ, उसकी रक्षाका पूरा बन्दोबस्त किया जायगा, परन्तु व्रतकी सफलतापर्यन्त तुम उनका मुख देख न सकोगे।"

महेन्द्र—"तब तो मैं यह व्रत न लूँगा।"

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रात बीती, सवेरा हुआ। वह निर्जन वन जो अबतक अंधकारमय और सुनसान था प्रकाशमय हो गया और पक्षियोंकी चहचहाहटसे आनन्द-मय हो उठा। उसी आनन्दमय प्रभातमें उस आनन्द काननके "आनन्दमठ" में सत्यानन्द ब्रह्मचारी मृगचर्मपर बैठे संध्या कर रहे हैं। पासमें जीवानन्द बैठे हुए हैं। इसी समय भवानन्द महेन्द्रसिंहको साथ लिए हुए आ पहुँचे पर ब्रह्मचारीजी एकाग्रचित्त संध्या कर रहे थे, इससे किसीको बोलनेका साहस न हुआ। कुछ देर बाद जब उनकी संध्या समाप्त हुई, तब भवानन्द और जीवानन्द दोनों हो उन्हें प्रणाम कर, उनके पैरोंकी धूल सिरपर चढ़ा, विनम्र होकर बैठ रहे। सत्यानन्दने भवानन्दको इशारेसे अपने पास बुलाया और उन्हें बाहर ले गये। क्या बातचीत हुई, नहीं मालूम, पर जब वे दोनों मन्दिरमें लौट आये तब ब्रह्मचारीने अपने मुँहपर दया भरी हँसी लाकर महेन्द्रसे कहा—"बेटा! मैं तुम्हारे दुःखसे स्वयं बड़ा दुःखी हो रहा हूँ। कल एकमात्र दीनबन्धु भगवानकीही दयासे मैं तुम्हारी स्त्री-कन्याके प्राण बचा सका हूँ। यह कह ब्रह्मचारीने कल्याणीकी रक्षाका सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद बोले—"चलो, अब वे दोनों जहां बैठी हैं वहीं तुम्हें ले चलूँगा।"

यह कह ब्रह्मचारीजी आगे-आगे चले और महेन्द्र उनके पीछे। दोनों देवालयके भीतर गये। वहाँ पहुँचकर महेन्द्रने देखा कि बड़ा

ही लम्बा-चौड़ा और ऊंचा कमरा है। उस बालसूर्यकी किरणोंसे जब साराका सारा जंगल प्रस्फुटित मणिकी भाँति जगमगा रहा है, उस लम्बे-चौड़े कमरेमें प्रायः अंधेराही छाया हुआ है। पहले महेन्द्रको यह न मालूम पड़ा कि उस घरमें क्या रखा है पर आँखें गड़ाकर देखनेसे उन्हें दिखलाई पड़ा कि एक विशाल चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है। जिसके चारों हाथोंमें शंख चक्र, गदा, पद्म विराजमन हैं। हृदयपर कौस्तुभमणि शोभा पा रही है और सामने सुदर्शनचक्र मानों घूम रहा है। सामने दो सिरकटी मूर्त्तियाँ—जिनके शरीर रक्त-रञ्जित हैं, पड़ी हुई हैं, जो शायद मधु और कैटभकी हैं। बाईं ओर बिखरे केश, कमलकी मालासे सुशोभित, लक्ष्मी भयभीत-सी खड़ी हैं। दाहिनी ओर सरस्वती पुस्तक वीणा और मूर्त्तिमत् रागरागिनियोंसे घिरी हुई खड़ी हैं। विष्णुकी गोदमें एक मोहनी मूर्ति पड़ी हुई है, जो लक्ष्मी और सरस्वतीसे कहीं अधिक सुन्दरी और ऐश्वर्य तथा प्रतापमें बढ़ी-चढ़ी मालूम पड़ती है। गन्धर्व, किन्नर, देव, यक्ष, सब उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारीने अति गम्भीर और अति भीत स्वरसे पूछा—"क्यों महेन्द्र! सब देख रहे हो न!"

महेन्द्र—"हाँ, देख रहा हूँ।"

ब्रह्म०—"विष्णुकी गोदमें कौन है?"

महेन्द्र—"देखता तो हूँ, पर वे कौन हैं?"

ब्रह्म०—"मां!"

महेन्द्र—"माँ कौन?"

ब्रह्म०—"हम लोग जिसकी सन्तान हैं?"

महेन्द्र—"वे कौन हैं?"

ब्रह्म०—"समय आनेपर उन्हें पहचान लोगे, बोलो, 'वन्देमातरम्।' अब चलो, तुम्हें और कुछ दिखलाऊँ।"

यह कह, ब्रह्मचारी उन्हें एक दूसरे कमरेमें ले गये। वहाँ जाकर महेन्द्रने देखा कि एक अपूर्व, सर्वाङ्गसम्पन्ना, सर्वाभरण भूषिता

जगद्धात्रीकी मूर्ति रखी है। महेन्द्रने पूछा—"ये कौन हैं?"

ब्रह्म०—"माँ, जैसी पहले थीं, उन्हींकी यह मूर्ति है। महेन्द्र, माँने हाथी और सिंह आदि जंगली जानवरोंको पैरों तले कुचलकर जंगली जानवरोंके स्थानमें अपना पद्मासन जमाया था। उस समय वह सर्वालंकारभूषिता और हास्यमयी सुन्दरी थीं। इनकी बाल सूर्यकी तरह कान्ति थी, ये सब ऐश्वर्योंसे भरी पूरी थीं, इन्हें प्रणाम करो।"

महेन्द्रने बड़ी भक्तिसे जगद्धात्रिरूपिणी मातृभूमिको प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारीने उन्हें एक अंधेरी सुरंग दिखलाते हुए कहा—"इसी रास्तेसे चले आओ!" यह कह वे स्वयं आगे आगे चले। महेन्द्र डरते-डरते उनके पीछे हो लिये। भूगर्भके अंधेरे कमरेमें न जाने कैसी रोशनी आ रही थी। उस हलकी रोशनीमें उन्होंने एक काली मूर्ति देखी।

ब्रह्मचारीने कहा—"देखो यह माँका वर्त्तमान रूप है।"

महेन्द्रने डरते हुए कहा- "माँ काली हो गयी हैं?"

ब्रह्म०—"हाँ, काली ही हो गयी हैं—एकदम अन्धकारसे घिरी हुई कालिमामयी हो रही हैं। इनका सर्वस्व लुट गया है, इसीसे नंगी हो रही हैं। आज सारा देश श्मशान-तुल्य हो रहा है। इसीलिये माँने कंकालकी माला धारण कर ली है। अपने सौभाग्यको अपने ही पैरों तले कुचल रही हैं। हाय माँ!" यह कहते-कहते ब्रह्मचारीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

महेन्द्रने पूछा—"हाथमें खड्ग-खप्पर क्यों है?"

ब्रह्म०—"हम उनकी सन्तान हैं, इसीसे हमने मांके हाथमें यही अस्त्र दे दिये हैं। बोलो—बन्देमातरम्।"

"बन्देमातरम्" कह कर महेन्द्रने कालीको प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारीने कहा—'इधर आओ।' यह कह वे दूसरी सुरंगमें घुसे और उसी राहसे ऊपर चढ़ने लगे। सहसा उनकी आँखें प्रातःकालके सूर्यकी किरणोंसे चमक उठीं। चारों ओरसे पक्षी सुरीले गान गाने लगे। महेन्द्रने देखा कि एक संगमर्मर

के बने हुए लम्बे-चौड़े मन्दिरके अन्दर एक सोनेकी बनी हुई दशभुजी मूर्ति बालसूर्यकी किरणोंसे देदीप्यमान मानों हँस रही हैं। ब्रह्मचारीने प्रणाम कर कहा—"देखो, माँका यही भविष्य रूप होगा। दशों दिशाओंमें दशों भुजाएँ फैली हुई हैं, जिनमें हथियारके स्थानमें तरह तरहकी शक्तियाँ सुशोभित हैं, पैरोंतले शत्रु विमर्दित होकर पड़ा हुआ है, उनके चरणोंकी सेवा करनेवाले बड़े-बड़े वीर केसरी शत्रु-संहारमें लगे हुए हैं। "दिग्भुजा" कहते-कहते सत्यानन्दका गला भर आया और वे रोने लगे—"दिग्भुजा" नाना आयुधधारिणी, शत्रुमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठ विहारिणी, दक्षिण भागमें भाग्यरूपिणी लक्ष्मी और वाम भागमें वाणी, विद्या-विज्ञान-दायिनी सरस्वती मौजूद हैं। साथ ही बलरूपी कार्तिकेय और कार्यसिद्धिरूपी गणेश भी विराजमान हैं। आओ; हम दोनों ही माँको प्रणाम करें।"

तब वे दोनों व्यक्ति ऊपर सिर उठा, हाथ जोड़ एक स्वरसे प्रार्थना करने लगे।

"सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके !
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तुते।"

दोनों व्यक्तियोंने भक्ति-भावसे उन्हें प्रणाम किया। तब महेन्द्रने गद्गद् कंठसे पूछा—"माँकी यह मूर्ति कब दिखाई देगी ?"

ब्रह्मचारीने कहा—"जिस दिन माँकी सभी सन्तान उन्हें माँ कहकर पुकारने लगेंगी, उसी दिन वे प्रसन्न होंगी।"

सहसा महेन्द्र पूछ बैठे—"मेरी स्त्री-कन्या कहाँ है ?"

ब्रह्मचारी—"चलो, दिखला दूँ।"

महेन्द्र—"उन्हें एक बार देखकर ही मैं विदा कर दूँगा।"

ब्रह्मचारी—"क्यों ?"

महेन्द्र—"मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूँगा।"

ब्रह्मचारी—"उन्हें कहाँ भेजोगे ?"

महेन्द्र कुछ देर सोचनेके बाद बोले—"मेरे घरपर कोई नहीं है और कोई दूसरा स्थान भी नहीं है। इस महामारीके जमानेमें उन्हें रखनेका और स्थान ही कहाँ पाऊँगा?"

ब्रह्मचारी—"जिस राहसे तुम यहाँ आये हो उसी राहसे मन्दिरके बाहर जाओ। मन्दिरके दरवाजेपर ही तुम्हारी स्त्री और कन्या बैठी हैं। कल्याणीने अबतक भोजन नहीं किया है। जहाँ वे दोनों माँ बेटी बैठी हैं, वहीं खाने-पीनेकी चीजें भी रखी हैं। उन्हें खिला-पिलाकर, तुम्हारी जो इच्छा हो करना। अब तुम हममेंसे किसीको न देख सकोगे। तुम्हारा मन यदि ऐसा ही रहा, तो उपयुक्त समय आनेपर मैं आ मिलूँगा।"

यह कहकर ब्रह्मचारी न जाने किस पथसे जाकर अन्तर्धान हो गये। महेन्द्र बतलाये हुए रास्तेसे बहार आते ही देखा कि कल्याणी कन्याको गोदमें लिये नाट्यशालामें बैठी है।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी सुरङ्गसे नीचे उतरकर तहखानेके एक कमरेमें चले आये। वहां जीवानन्द और भवनन्द रुपये गिन-गिनकर उनकी अलग-अलग गड्डियाँ लगा रहे थे। उस घरमें ढेरके ढेर सोना, चांदी, तांबा, हीरा, मूंगा और मोती आदि रखे हुए थे। ये दोनों कल रातके लूटे हुए रुपयोंकी गड्डियाँ लगानेमें लगे हुए थे। सत्यानन्द-ने कमरेमें प्रवेश करते ही कहा—"जीवानन्द! महेन्द्र भी हमारे दल-में आनेवाला है। उसके मिल जानेसे सन्तानोंका विशेष उपकार होगा; क्योंकि उसके बाप दादोंका संचित सारा धन माँकी सेवामें लग सकेगा, पर जबतक वह कार्य वाक्यसे मातृ-भक्त नहीं बन जाता उसे ग्रहण न करना। अपना-अपना काम करके तुम लोग भिन्न-भिन्न समय-पर उसका अनुसरण करते रहना। अवसर देखकर उसे श्रीविष्णु भगवानके मण्डपमें ले आना। समय-कुसमयमें उसकी रक्षा बराबर करते रहना; क्योंकि दुष्टोंका शासन करना जैसा धर्म है वैसा ही शिष्टों की रक्षा करना भी है।

बारहवां परिच्छेद

अनेक कष्ट सहनेके बाद महेन्द्र और कल्याणीकी मुलाकात हुई। कल्याणी फूट फूटकर रोने लगी, महेन्द्र तो और भी फूट-फूट रोने लग। रोने धोनेके बाद आँखें पोछने लगे। जितना अधिक आँखें पोछते उतने ही अधिक आँसू उमड़ आते। आँसू रोकनेके लिये ही कल्याणीने खाने पीनेकी बात छेड़ दी। ब्रह्मचारीके अनुचर जो कुछ भोजन रख गये थे, उनको खानेके लिये उसने महेन्द्रसे अनुरोध किया। दुर्भिक्षके दिनोंमें अन्य व्यंजन कहां मिलते हैं पर देशमें जो कुछ है, वह सन्तानोंके लिये सुलभ ही है। उस जङ्गलमें साधारण मनुष्यकी पहुँच नहीं थी, इसलिये इस दुर्गम वनमें फलोंको कोई नहीं लेने आता था, नहीं तो जहाँ कहीं फल दिखाई पड़ते थे, भूखसे तड़पते हुए लोग उसे तोड़कर खा जाते थे। इसीसे ब्रह्मचारीके अनुचर अनेक तरहके जंगली फल और थोड़ा-सा दूध रख गये थे। इन सन्यासियोंके बहुतसी गायें भी थीं! कल्याणीका कहा मान, महेन्द्रने पहले तो स्वयं कुछ फलाहार किया। इसके बाद दूधमें से थोड़ासा लड़कीको पिलाया और थोड़ासा बचाकर रख दिया, कि फिर पिलायेंगे। इसके बाद ही दोनोंको नींद आने लगी और उन्होंने निश्चिन्त होकर कुछ देर विश्राम किया। नींद टूटने पर दोनों इस बातकी सलाह होने लगी कि अब कहां चलना चाहिये। कल्याणीने कहा—"विपदकी बात सोचकर ही घर छोड़कर बाहर निकले थे। पर अब देखती हूँ कि घरसे तो बाहर विपद बहुत है। तब चलो, घर ही लौट चलें!" महेंद्रका भी यही अभिप्राय था। वे चाहते थे कि कल्याणीको घरपर रख किसीको उसको देखरेखके लिये ठीककर चला आऊँ और इस परम रमणीक, अलौकिक पुनीत मातृसेवा-व्रतमें लग जाऊँ। इसलिये वे झट राजी हो गये। इस तरह दोनों व्यक्ति पूरी तरह विश्राम कर कन्याको गोदमें ले पदचिह्न ग्रामकी ओर चले।

पर उस अगम वनसे पदचिन्ह जानेका रास्ता उन्हें नहीं मिला। उन्होंने सोचा था कि जंगलसे बाहर निकलते ही रास्ता मिल जायगा, पर यहाँ तो बाहर निकलनेका ही रास्ता न मिला। वे बड़ी देरतक जंगलके भीतर भटकते रहे, फिर-फिरकर उसी मठमें लौट आते थे। कहींसे रास्ता दिखाई नहीं देता था। सामने ही एक वैष्णवोंका बाना पहने हुए ब्रह्मचारी खड़े हंस रहे थे। उन्हें देख महेंद्रने झुंझलाकर कहा—"बाबाजी! हंसते क्यों हो?"

बाबाजी—"तुमलोग इस वनमें कैसे आये?"

महेंद्र—"चाहे जैसे आये, पर आ गये हैं?"

बाबाजी—"फिर बाहर क्यों नहीं निकल पाते?" इतना कह वे फिर हँसने लगे।

महेंद्र फिर झल्ला उठे, बोले—"बड़े हंसनेवाले बने हो, पर क्या तुम स्वयं बाहर निकल सकते हो?"

वैष्णव बाबा ने कहा—"हाँ मेरे साथ आओ. मैं तुम्हें अभी रास्ता दिखाये देता हूँ। तुम दोनों अवश्य ही किसी संन्यासी या ब्रह्मचारीके साथ यहाँ आये हो, नहीं तो इस मठमें आने-जानेका रास्ता और किसीको नहीं मालूम है!"

यह सुनकर महेंद्रने पूछा—"तो क्या आप भी सन्तान हैं?"

वैष्णवने कहा—"हाँ मैं भी सन्तान ही हूँ, आओ मेरे साथ-साथ चले आओ। मैं तुम लोगोंको रास्ता दिखानेके लिये ही यहाँ खड़ा हूँ।"

महेंद्र—"आपका नाम क्या है।"

वैष्णव—"धीरानन्द गोस्वामी।"

यह कह, धीरानन्द आगे-आगे चले और महेंद्र तथा कल्याणी उनके पीछे। बड़े टेढ़े रास्तेसे उन्हें जंगलसे बाहर निकालकर धीरानन्द फिर उसी वनमें चले आये।

आनन्दवनसे बाहर हो कुछ दूर जाते ही उन्हें हरे-भरे वृक्षोंसे भरा हुआ मैदान दिखाई दिया। एक ओर तो मैदान था और दूसरी ओर जङ्गलके बगलसे सड़क चली जाती थी। एक स्थानपर वनके बीचमें बहती हुई एक छोटी-सी नदी कल कल शब्द कर रही थी। उसका जल निर्मल और अति नीले रङ्गका था। नदीके दोनों ओरके सुन्दर शोभामय नाना भांतिके वृक्षोंकी छाया जलपर पड़ रही थी। तरह-तरहके पक्षी वृक्षोंपर बैठे हुए कलरव कर रहे थे। वह मीठी-मीठी बोलियाँ नींदके मधुर कलकल शब्दमें मिल जाती थीं! उसी तरह वृक्षोंकी छाया और जलके रङ्ग भी आपसमें मिल गये थे। कदाचित् कल्याणीका मन भी उस छायामें रम गया। कल्याणी एक वृक्षके नीचे बैठ गयी और स्वामीसे भी बैठनेके लिये अनुरोध करने लगी। कल्याणीने स्वामीकी गोदसे कन्याको लेकर अपनी गोदमें बैठा लिया। इसके बाद स्वामीका हाथ अपने हाथमें लिये हुए वह कुछ देरतक चुपचाप बैठी रही, फिर पूछा—"आज मैं आपको बड़ा उदास देख रही हूँ। सिरपर जो विपद आयी थी, वह तो टल ही गयी, फिर यह उदासी किसलिये।"

महेन्द्रने एक लम्बी साँस लेकर कहा—"अब मैं अपने आपे में नहीं हूँ। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।"

कल्याणी—"क्यों?"

महेन्द्र—"तुम्हारे खो जानेपर मेरे ऊपर जो बीती, उसका हाल कहता हूँ सुनो।"

यह कह महेन्द्रने सारी कथा ब्यौरेवार कह सुनायी।

कल्याणीने कहा—"मेरे ऊपर भी बड़े सङ्कट आये। मैं भी बड़ी मुसीबतमें पड़ गयी थी। पर वह सब सुनकर क्या लाभ, इतना दुःख होनेपर भी मुझे कैसे नींद आ गयी थी, समझमें नहीं आता, कल रात पिछले पहर मुझे नींद आ गयी थी। नींदमें मैंने स्वप्न देखा,

किस पुण्य-बलसे मैंने वैसा स्वप्न देखा, नहीं कह सकती। मैंने देखा कि मैं एक अपूर्व स्थानमें पहुँच गयी हूँ! वहाँ मिट्टीका नाम निशान नहीं है—है केवल ज्योति—अत्यन्त शीतल तड़ित प्रवाहकी तरह अत्यन्त मधुर ज्योति! वहाँ मनुष्य नहीं हैं—केवल ज्योतिर्मयी मूर्त्तियाँ ही दिखायी पड़ती हैं। वहाँ किसी तरहका शब्द नहीं होता—केवल कहीं दूरपर -मधुर गीतावाद्यकी तरह कोई शब्द सुनाई पड़ता है। नवविकसित लक्ष-लक्ष मल्लिकामालती तथा गन्धराजकी गन्ध चारों ओर फैली है। वहाँ सबसे ऊपर, सबसे दर्शनीय स्थानमें न जाने कौन बैठा है, मानों नील पर्वत अग्निके समान भीतर-ही-भीतर मन्द मन्द जल रहा हो। उनके सिरपर बड़ा भारी दीप्तमान किरीट शोभा पा रहा है। उनके चार हाथ हैं और उनके दोनो तरफ कौन थीं मैं नहीं पहचान सकी। कदाचित् वे स्त्री-मूर्त्तियाँ थीं, किन्तु उनमें इतना रूप, इतनी ज्योति, इतना सौरभ था कि मैं तो उनकी ओर देखते ही विह्वला सी हो गयी। और अच्छी तरह आँखें लगाकर न देख सकी और न पहचान सकी, कि ये कौन हैं? उन्हीं चतुर्भुज देवताके पास एक और स्त्री-मूर्त्ति थी, वह भी ज्योतिसे जगमगा रही थीं; पर चारों ओर मेघ छा रहे थे इसलिये ज्योति अच्छी तरह फूटकर बाहर नहीं निकल रही थी, धुँधली दिखाई दे रही थी। इससे मालूम होता था कि वह कुछ खिन्न सी हो रही है। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानों कोई अत्यन्त रूपवती स्त्री मार्मिकवेदनाके कारण रो रही है। मन्द-मन्द-सुगन्धि युक्त वायुकी तरङ्गोंमें प्रवाहित मैं भी उसी चतुर्भुजी मूर्त्तिके सिंहासन के सामने आ गयी तब मानों उसी दुःखिता और मेघमण्डिता स्त्रीने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—"बस यही है वह, जिसके कारण महेन्द्र मेरी गोदमें नहीं आता।" इसी समय मुझे सुरीली मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। उस चतुर्भुजने मानों मुझसे कहा—"तुम स्वामीको छोड़कर मेरे पास चली आओ। यही तुम लोगोंकी माँ है—तुम्हारा

स्वामी इनकी सेवामें लगनेवाला है। यदि तुम अपने स्वामीके पास रहोगी, तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा। तुम चली आओ।" मैं रो पड़ी और बोली कि स्वामीको छोड़कर कैसे आऊँ ? एक बार फिर वही मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी कि "मैं ही स्वामी, मैं ही माता, मैं ही पिता, मैं ही पुत्र और मैं ही कन्या हूँ—तुम मेरे निकट आ जाओ।" इसपर मैंने क्या उत्तर दिया, याद नहीं है, क्योंकि इसके बाद ही मेरी नींद टूट गयी।" यह कहकर कल्याणी चुप हो गयी।

महेन्द्र भी विस्मय और भयसे चुप हो रहे। पेड़के ऊपर दहियल नामक पक्षी बोल उठा, पपीहा 'पी कहाँ' के शोरसे आसमान गुञ्जाने लगा, कोयलकी कूक दशों दिशाओंमें गूँज गयी, भृङ्गराज अपने सुरीले कण्ठसे काननको प्रतिध्वनित करने लगे। सामने नदी कलकल शब्द कर रही थी। हवा जङ्गली फूलोंकी भीनी-भीनी सुगन्धमें सराबोर थी, बीच-बीचमें कहीं-कहीं नदीके जलमें सूर्यकी किरणें झलमला रही थीं। कहीं ताड़के पत्तोंका मृदु-मधुर मरमर शब्द हो रहा था। दूर पर नीले रङ्गकी पर्वत-श्रेणी दिखाई दे रही थी। इन सब सौंदर्योंका आनन्द लेते हुए दोनों बड़ी देरतक चुपचाप बैठे रहे। इसके बाद कल्याणीने पूछा—"क्या सोच रहे हो ?"

महेन्द्र—"यही कि क्या करूँ। स्वप्न केवल विभीषिका मात्र है। यह आपही मनमें उत्पन्न होता है और आप ही लय हो जाता है। वह और कुछ नहीं—जीवनका जल-बिम्ब मात्र है। चलो, घर चलें।"

कल्याणी—"देवता तुम्हें जहाँ जानेको कहें वहीं जाओ।" यह कहकर कल्याणीने कन्याको स्वामीकी गोदमें दे दिया।

महेन्द्रने कन्याको गोदमें लेकर पूछा—"और तुम—तुम कहाँ जाओगी ?"

कल्याणीने दोनों हाथोंसे आँखें मूँद, सिर थामकर कहा—"मुझे भी देवता जहाँ जानेको कहेंगे, वहीं चली जाऊँगी।"

महेन्द्र चौंककर बोले—"वह जगह कहाँ है? वहाँ किस तरह जाओगी?"

कल्याणीने स्वामीको जहरकी डिबिया दिखला दी।

महेन्द्रने विस्मित होकर पूछा—"क्या तुम जहर खाओगी?"

"खानेका विचार कर चुकी थी, परन्तु"—इतना कहकर कल्याणी कुछ सोचने लगी। महेन्द्र उसके मुँहकी ओर ताकते रह गये। उन्हें एक-एक पल वर्ष मालूम पड़ने लगा। कल्याणीने पूरी बात नहीं कही। यह देख महेन्द्रने पूछा—"तुम क्या कह रही थी, कहो न?"

कल्याणी—"खानेका इरादा कर चुकी थी, पर तुम्हें और सुकुमारीको छोड़कर बैकुण्ठमें भी जानेकी मेरी इच्छा नहीं होती। मुझसे मरा न जायगा।"

यह कह कल्याणीने विषकी डिबिया जमीनपर रख दी। फिर दोनों व्यक्ति भूत और भविष्यके सम्बन्धमें बातें करने लगे। ध्यान बँट गया। लड़कीने खेलते-खेलते विषकी डिबिया उठा ली, दोनोंमेंसे किसीने न देखा।

सुकुमारीने उस डिबियाको कोई उम्दा खिलौना समझा। उसने एक बार उसे बायें हाथसे पकड़कर दाहिने हाथसे जोरसे दबाया। इसके बाद दोनों हाथोंसे उसे खोलनेकी चेष्टा करने लगी। अन्तमें डिबिया खुल गयी और विषकी गोली नीचे गिर पड़ी।

गोली उसके पिताके कपड़ेपर गिरी थी। उसे देखकर सुकुमारीने सोचा कि यह कोई और भी अच्छा खिलौना है। डिबिया छोड़कर उसने गोलीकी ओर हाथ बढ़ाया और उसे झटपट उठा लिया।

गोली उठाकर उसने मुँहमें डाल ली।

"क्या खाया? क्या खाया? हाय सर्वनाश हुआ।" यह कह कल्याणीने झट उसके मुँहमें उँगली डाल दी। दोनोंने देखा कि विषकी डिबिया खाली पड़ी है। इसे भी एक तरहका खेल समझकर सुकुमारी अपनी

नन्हीं नन्हीं दतुलियाँ निकाल अपनी माँकी ओर देखकर हँसने लगी। इतनेमें विषकी गोली जो कसैली मालूम पड़ी तो सुकुमारीने झट मुँह बा दिया और कल्याणीने गोली उसके मुँहसे बाहर निकालकर फेंक दी। बालिका रोने लगी।

गोली ज्यों-की-त्यों जमीनमें पड़ी रही। कल्याणी दौड़ी नदीसे आँचल भिगो लायी और कन्याके मुँहमें जल निचोड़ने लगी। उसने अधीर होकर महेंद्रसे पूछा—"क्या कुछ जहर पेटमें भी चला गया?"

सबसे पहले सन्ततिकी दुष्कामनाही माँ-बापके ध्यानमें आती है। जहाँ अधिक प्रेम होता है, वहाँ आशंका भी अधिक होती है। महेन्द्रने पहले नहीं देखा था कि विषकी गोली कितनी बड़ी थी। यह प्रश्न सुन, उसे अच्छी तरह देख भालकर बोले—"हाँ मालूम होता है कि बहुत-सी खा गयी है।"

कल्यणीको भी सहज ही इस बातका विश्वास हो गया। वह भी बड़ी देर तक विषकी गोलीको देखती रही। थूकके साथ विषका कुछ अंश पेटमें चला गया था, अतएव विषके प्रभावसे वह बेहोश होने लगी। वह छटपटाने लगी और रोती-रोती एकदम बेसुध हो गयी। तब कल्याणीने स्वामीसे कहा—

"अब क्या देखते हो? सुकुमारीको देवताओंने बुला लिया। वह जिस राहपर गयी है, मुझे उस राहपर जाना है।" यह कह कल्याणी उस विषकी गोलीको मुँहमें डालकर तुरन्त ही निगल गयी।

महेन्द्र रो पड़े, बोले—"हाय! कल्याणी! तुमने यह क्या कर डाला?"

कल्याणीने कुछ उत्तर नहीं दिया, स्वामीके पैरोंकी धूल माथे चढ़ाकर बोली—"स्वामी अब बातें करना व्यर्थ है, मैं तो चली।"

"हाय! कल्याणी! यह तुमने क्या कर डाला।" यह कहकर महेन्द्र जोर-जोर रोने लगे। कल्याणीने बड़े ही धीमे स्वरमें कहा—

"मैंने जो कुछ किया है अच्छा ही किया है। तुच्छ नारीके कारण तुम्हें देवताके कार्यसे विमुख होना पड़ता। मैंने देवताकी बात टाल देनी चाही थी, इससे मेरी लड़की के प्राण गये। अधिक अवज्ञा करती, तो कदाचित् तुम्हींको खोना पड़ता।"

महेन्द्रने रोते हुए कहा—"मैं तुम्हें कहीं रख आता। जब हम लोगोंका कार्य सिद्ध हो जाता तब फिर तुम्हें लेकर सुखसे जीवन बिताता। कल्याणी! तुम्हारे ही दमतक तो मेरा इस दुनियासे नाता था। तुमने आज यह क्या कर डाला? जिस हाथके बलपर मैं तलवार पकड़ता वही हाथ तुमने आज काट डाला! तुम्हारे बिना अब मैं व्यर्थ हूँ।"

कल्याणी—"तुम मुझे कहाँ ले जाकर रख आते? ऐसा कौन स्थान रह गया है? माँ बाप, भाई-बन्धु सभी तो इस अकाल चक्करमें पड़कर मर गये। फिर मेरे लिये किसके घरमें जगह थी, जहाँ ले जाते? मुझे कौन-सी राह ले जाते, तुम्ही कहो? मैं तुम्हारे गलेकी फाँस थी, मर गयी, बला टली। अब मुझे आशीर्वाद दो कि मैं मरकर उसी ज्योतिमय लोकमें जाऊँ और वहीं तुमसे मिलूँ।" यह कहकर कल्याणीने फिर स्वामीकी पद-रज माथेपर चढ़ायी। महेंद्र कुछ बोल न सके, फिर रोने लगे। कल्याणी अति मृदु, अति मनोहर, अति स्नेहमय कंठसे फिर कहने लगी—"देवताकी इच्छाको कौन टाल सकता है? उन्होंने मुझे संसारसे विदा होनेकी आज्ञा दी है, अब मैं चाहूँ भी तो ठहर नहीं सकती। यदि मैं अपने आप विष खाकर न मरती तो मुझे और ही कोई मारता। इसलिये प्राण देकर मैंने कुछ बुरा काम नहीं किया। तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, उसे काय-वचन-मनसे सिद्ध करो, इससे तुम्हें पुण्य होगा। इसी पुण्यके प्रभावसे मुझे स्वर्ग मिलेगा। फिर हम तुम इकट्ठे हो अनन्त कालतक स्वर्गका सुख भोग करते रहेंगे।" इधर सुकुमारीने एक बार वमन किया इससे वह कुछ सम्हल गयी। उसके पेटमें इतना विष नहीं पहुँचा था, जिससे जान निकल जाती, पर उस

समय महेन्द्रका ध्यान उसकी ओर नहीं था। वे कन्याको कल्याणीकी गोदमें रख, दोनोंको गाढ़ आलिंगन कर रोने लगे उसी समय जंगलके भीतरसे मृदु, पर मेघ की तरह गम्भीर शब्द सुनाई दिया—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !

गोपाल ! गोविन्द ! मुकुन्द ! शौरे !"

उस समय कल्याणीकी नस-नसमें विष प्रवेश कर रहा था, उसकी चेतना कुछ-कुछ लुप्त हो रही थी। उसने बेहोशीकी ही हालतमें सुना; मानों उसी वैकुण्ठमें उसी वंशीकी सुरीली तानमें कोई गा रहा है--

"हरे ! मुरारे मधुकैटभारे !

गोपाल ! गोविन्द ! मुकुन्द ! शौरे !"

कल्याणी भी उसी बेहोशीकी हालतमें अपने सुमधुर कंठसे पुकार उठी—"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !" उसनेमहेन्द्रसे कहा "बोलो, हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

जंगलसे आते हुए उस मधुर स्वर तथा कल्याणीके मुँहसे निकले हुए मधुर स्वरसे विमुग्ध हो ईश्वरकी सहायतामें विश्वासकर कातरचित्त महेन्द्र भी कह उठे—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

फिर तो चारों ओरसे यही ध्वनि उठने लगी—"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे।" मानों पेड़ोपर बैठे पक्षी भी कहने लगे—

"हरे ! मुरारे मधुकैटभारे।"

नदीके कल कल नादसे भी मानों यही ध्वनि निकलने लगी,

"हरे ! मुरारे मधुकैटभारे !"

उस समय महेन्द्र अपना सारा शोक-सन्ताप भूल गये। पागलोंकी कल्याणीके सुरमें-सुर मिलाकर कहने लगे—

"हरे ! मुरारे मधुकैटभारे !"

जंगलके भीतरसे भी मानों उन्हींकी तान-में-तान मिलाकर कोई कह रहा था—

"हरे ! मुरारे मधुकैटभारे !"

क्रमशः कल्याणीका कण्ठस्वर धीमा पड़ने लगा। तो भी वह कह रही थी—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

धीरे-धीरे कण्ठ बन्द हो गया। कल्याणीके मुँहसे आवाज नहीं निकलती। उसकी आँखें बन्द हो गयीं, देह ठण्ढी पड़ गयी। महेन्द्र समझ गये कि कल्याणी "हरे ! मुरारे !" रटती-रटती वैकुण्ठधामको चली गयी। तब पागलोंकी तरह ऊँचे स्वरसे काननको कम्पित करते और पशु-पक्षियोंको डराते हुए महेंद्र पुकारने लगे—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

उसी समय न जाने किसने वहाँ जाकर उन्हें अपनी छातीसे लगा लिया और उनके गलेमें गला मिलाकर पुकारने लगा—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

फिर तो दोनों व्यक्ति उसी अनन्तकी महिमासे, उस अनंत अरण्यमें उस अनंत पथगामिनीके शरीरके सामने बैठे हुए अनंत भगवान्‌का नाम ले-लेकर पुकारने लगे। पशु-पक्षी चुप हैं, पृथ्वी शोभामयी हो रही है। वह स्थान और समय इस परम संगीतके लिये पूर्ण रूपसे उपयुक्त थे, सत्यानन्द महेन्द्रको गोदमें लेकर बैठ गये।

तेरहवां परिच्छेद

इधर राजधानीके हर गली-कूचेमें हलचल-सी मच गयी। खबर फैल गयी कि जो सरकारी खजाना कलकत्तेका चालान किया गया था उसे संन्यासियोंने लूट लिया। संयासियोंको पकड़नेके लिये बहुतसे सिपाही और

भाला-बरदार छोड़ गये। इन दिनों अकालके मारे उस दुर्भिक्ष पीड़ित प्रदेशमें सच्चे संन्यासी बहुत ही कम रह गये थे, क्योंकि संन्यासी भीख माँगकर खानेवाले ठहरे, पर यहाँ जब गृहस्थोंको ही खाना नसीब नहीं होता था, तब संन्यासियोंको भीख कौन देता? इसलिये जो लोग सच्चे संन्यासी थे वे पेटकी मारसे काशी, प्रयाग आदि स्थानोंमें चले गये। हाँ, जो लोग अपनेको 'सन्तान' कहते थे, वे ही कभी तो संन्यासीका वेश धारण कर लेते थे और कभी इच्छा होनेपर उसे उतार फेंकते थे। अब जब संन्यासियोंकी धर पकड़ होने लगी, तब संन्यासीका बाना उतार फेंका। लालचके पुतले सरकारी नौकर, कहीं संन्यासियोंकी सूरत न देख केवल गृहस्थोंके ही वर्तन-भाँड़े फोड़कर सन्तोष करने लगे। केवल सत्यानन्द गेरुआ वसन किसी समय नहीं त्यागते थे।

उसी कृष्ण कल्लोलिनी क्षुद्र नदीके तीरपर रास्तेके किनारे एक पेड़के नीचे कल्याणी पड़ी है, महेन्द्र और सत्यानन्द एक दूसरेका आलिङ्गन किये डबडबायी आँखोंसे ईश्वरकी गुहार कर रहे हैं, ऐसे समय नजरुद्दीन जमादार सिपाहियोंके साथ वहाँ पहुँचा और सत्यानन्दका गला पकड़कर बोला, यही साला संन्यासी है।

दूसरे सिपाहीने इसी तरह महेन्द्रको भी पकड़ लिया, क्योंकि उसने सोचा कि जब यह संन्यासीके साथ है, तब जरूर यह भी संन्यासी ही होगा। तीसरा घासपर पड़ी हुई कल्याणीको भी पकड़ने चला, पर यह देखकर लौट आया कि यह तो एक औरतकी लाश है। इसी विचारसे उन्होंने लड़कीको भी छोड़ दिया। वे लोग विना कुछ कहे सुने चुपचाप सत्यानन्द और महेन्द्रको बाँधकर ले चले। कल्याणीकी लाश और नन्हीं सी लड़की बिना किसी रक्षकके वहीं पेड़के तले पड़ी रह गयी।

पहले तो शोक और प्रेमसे उन्मत्त होनेके कारण महेन्द्रको कुछ सुधबुध न थी। इसलिये कहाँ क्या हो रहा है और क्या हो गया है

यह उनकी समझमें नहीं आया। उन्होंने सिपाहियोंको बाँधनेमें बाधा नहीं डाली, पर दो-ही-चार पग चलनेपर उनकी समझमें आ गया, कि ये तो हमें बाँधे लिये जा रहे हैं। कल्याणीकी लाश अभी तक बिना जली पड़ी थी और नन्हीं-सी लड़की भी वहीं पड़ी रह गयी थी। सम्भव है कि उसे कोई खूँखार जानवर खा डाले। यह बात मनमें आते ही उन्होंने बड़े जोरसे दोनों हाथोंका बन्धन तोड़ डाला और पलक मारते ही एक जमादारको इस जोरसे लात मारी कि वह धड़ामसे भूमिपर गिर पड़ा। वे एक और सिपाहीपर हमला करने जा रहे थे कि बाकी तीन सिपाहियोंने उन्हें घेरकर काबूमें कर लिया और उनके हाथ पैर बाँध दिये। दुःखसे कातर हो, महेन्द्रने ब्रह्मचारी सत्यानन्दसे कहा—"आप थोड़ी-सी सहायता करते तो मैं इन पाँचोंको यमपुरीका रास्ता दिखा देता।" इसपर सत्यानन्दने कहा—"मेरी इन पुरानी हड्डियोंमें जोर ही कितना है? मैं जिन्हें गुहरा रहा था उनके सिवाय मुझे और किसीका भरोसा नहीं है। जो होनहार है उसके विरुद्ध चेष्टा न करो। हम दो आदमी इन पाँचोंको परास्त नहीं कर सकते; चलो देखें ये हमें कहाँ ले जाते हैं। भगवान सब तरहसे भला ही करेंगे।"

दोनोंने फिर अपने छुटकारेकी कोई चेष्टा नहीं की और सिपाहियों-के पीछे-पीछे जाने लगे। कुछ दूर चलनेपर सत्यानन्दने सिपाहियोंसे कहा—"भाई, मैं सदा हरिनाम जपा करता हूँ, क्या यह कोई जुर्म है?" जमादारको सत्यानन्द भलेमानससे मालूम पड़े! उसने कहा—"नहीं, तुम हरिनामका सुमिरन करो। हम लोग तुम्हें नहीं रोकते। तुम बूढ़े ब्रह्मचारी हो। तुम तो शायद रिहाई भी पा जाओगे, पर इस शैतानको फांसीका हुक्म हुए बिना नहीं रह सकता।"

यह सुनकर ब्रह्मचारी मीठे स्वरमें गाने लगे—

"धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने वर नारी।
मां कुरु धनुर्धर गमन विलम्बन मति विधुरा सुकुमारी।"

शहरमें आनेपर दोनों व्यक्ति कोतवालके सामने हाजिर किये गये। कोतवालने राजदरबारमें इत्तिला भेजकर महेन्द्र और ब्रह्मचारीको हवालातमें भेज दिया। वह कारागार बड़ा ही भयानक था। जो वहाँ जाता वह जीता लौटकर नहीं आता था, क्योंकि कोई न्याय करनेवाला नहीं था। उस समय न तो अंग्रेजोंकी जेल थी, न अंग्रेजोंका इन्साफ। आज-कल तो आईन-कानूनका जमाना है। उन दिनों पूरा अन्धेर था। कानूनके जमानेसे गैरकानूनी जमानेका मुकाबिला पाठक ही कर लें, हम क्या कहें!

चौदहवां परिच्छेद

रात आ पहुँची। कारागारमें पड़े हुए सत्यानन्दने महेन्द्रको कहा—"आज बड़े ही आनन्दका दिन है; क्योंकि हम कैदमें हैं, बोलो 'हरे मुरारे!'

महेन्द्रने कातर स्वरसे कहा—'हरे मुरारे।'

सत्यानन्द—"वत्स! तुम उदास क्यों हो रहे हो? इस महाव्रतको ग्रहण करनेपर तो तुम्हें एक-न-एक दिन स्त्री-कन्याको अवश्य छोड़ना ही पड़ता। उनसे सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ता।"

महेन्द्र—"त्याग कुछ और ही चीज है और यम-दण्ड कुछ और ही। जिस शक्तिके बलपर मैं यह व्रत ग्रहण करनेको था, वह तो मेरी स्त्री-कन्याके ही साथ चली गयी।"

सत्या०—"शक्ति हो जायगी। मैं ही तुम्हें शक्ति दूँगा। महामन्त्रसे दीक्षित हो, महाव्रत ग्रहण कर लो!"

महेंद्र (विरक्त होकर)—"मेरी स्त्री कन्याको स्यार कुत्ते नोचकर खाते होंगे। मुझसे किसी व्रतकी बात न कहिये।"

सत्या०—"इसके लिये निश्चिन्त रहो। सन्तानोंने तुम्हारी स्त्रीका संस्कार कर दिया है और तुम्हारी कन्याको भी अच्छे स्थानमें रख आये हैं।"

महेन्द्रको बड़ा अचम्भा हुआ। उन्हें इस बातपर विश्वास न हुआ। वे बोले—"यह बात आपको कैसे मालूम हुई? आप तो बराबर मेरे साथ ही रहे।"

सत्या०—"हम लोगोंने महामन्त्रकी दीक्षा ली है। हमपर देवताओंकी दया रहती है। आजही रातको तुम्हें इस बातकी खबर मिलेगी और आज ही तुम इस कैदखाने से छूट भी जाओगे।"

महेन्द्र कुछ न बोले। सत्यानन्द समझ गये कि महेन्द्रको मेरी बातका विश्वास नहीं होता। सत्यानन्दने कहा—"क्या तुम्हें मेरी बातका विश्वास नहीं होता? परीक्षा कर देखो।" यह कह सत्यानन्द कैदखाने-के द्वारतक चले आये। उन्होंने अंधेरेमें क्या किया, सो तो महेन्द्रने नहीं देखा पर यह समझ गये कि किसीसे बातचीत की है। उनके लौट आनेपर महेन्द्रने पूछा—"क्या करूँ?"

सत्या०—"तुम अभी इस कारागाहसे छुटकारा पाओगे।"

यह बात पूरी होते-न-होते कैदखानेका दरवाजा खुल गया और एक आदमीने अन्दर आकर पूछा—"महेन्द्रसिंह किसका नाम है?"

महेन्द्रने कहा—"मेरा नाम।"

आगन्तुकने कहा—"तुम्हारी रिहाईका हुक्म हुआ है, तुम बाहर जा सकते हो।"

पहले महेन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ, फिर सोचा कि झूठी बात है, पर परीक्षाके लिये बाहर चले ही आये। किसीने रोक-टोक नहीं की। वे राजपथतक चले आये।

इधर आगन्तुकने सत्यानन्दसे पूछा—"महाराज! आप भी क्यों नहीं निकले? मैं तो आपके ही लिये आया हूँ।"

सत्या०—"तुम कौन हो? क्या धीरानन्द गोस्वामी?"

धीर०—"जी हां।"

सत्या०—"तुम पहरेदार कैसे बने?"

धीरा०—"मुझे भवानन्दने यहाँ भेजा है। नगरमें आकर मैंने सुना कि आप लोग कैद हो गये हैं, यह सुनते ही मैं थोड़ी धतूरा मिली हुई भांग लिये चला आया। उसीके प्रतापसे जो खाँ साहब यहाँ पहरा दे रहे थे, उन्हें बेहोश किया। यह सब अङ्गा, पायजामा, पगड़ी और बर्छी उन्हीं हजरतका है।"

सत्या०—"अच्छा, तुम इसी वेशमें शहरसे बाहर निकल जाओ। मैं यों नहीं जानेका।"

धीरा०—"क्यों?"

सत्या०—"आज सन्तानोंकी परीक्षाका दिन है।"

इतनेमें महेंद्र लौट आये। सत्यानन्दने पूछा—"लौट क्यों आये?"

महेन्द्र—"आप सचमुच बड़े सिद्ध महात्मा हैं। मैं आपका साथ छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

सत्या०—"अच्छा, तो रहो। हम दोनों आज रातको दूसरी तरहसे छुटकारा पा लेंगे।"

धीरानन्द बाहर चले गये। सत्यानन्द और महेन्द्र कैदखानेमें ही पड़े रहे।

पन्द्रहवां परिच्छेद

ब्रह्मचारीका गाना बहुतोंने सुना था। जीवानन्दके भी कानमें वह गाना पड़ा था। पाठकोंको स्मरण होगा कि उन्हें महेन्द्रका पीछा करते रहनेका हुक्म हुआ था। उन्हें रास्तेमें एक स्त्री मिल गयी थी, जो सात दिनसे भूखी-प्यासी रास्तेके किनारे पड़ी थी। उसीकी जान बचानेमें लग जानेके कारण जीवानन्दको घड़ी दो घड़ीका विलम्ब हो गया। उसके प्राणोंकी रक्षा कर वे उस स्त्रीको कुवाच्य कहते, इधर ही चले आ रहे थे (क्योंकि इस विलम्बका कारण वही थी) कि उन्होंने देखा

कि प्रभुको मुसलमान पकड़े लिये जा रहे हैं और प्रभु गीत गाते हुए चले जा रहे हैं।

जीवानन्द महाप्रभु सत्यानन्दके सब इशारे समझते थे। इसीसे उनके मुँहसे यह गान सुनकर कि—

"धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने वर नारी।"

उन्होंने सोचा कि कहीं नदीके तीरपर कोई दूसरी औरत तो भूखी-प्यासी नहीं पड़ी हुई है। यही सोचते-विचारते जीवानन्द नदीके किनारे-किनारे चले। जीवानन्दने यह देख लिया था कि ब्रह्मचारीजीको मुसलमान बांधे लिये जा रहे हैं। उन्होंने पहले तो उन्हें छुड़ानेका विचार किया; फिर सोचा कि इस संकेतका अर्थ तो कुछ और ही है। उनकी जीवन-रक्षा करनेकी अपेक्षा उनकी आज्ञाका पालन करना ही वे सदासे सिखलाते आये हैं। यह सोच जीवानन्दने उनकी आज्ञाका पालन करना उचित समझा।

यही सोचकर जीवानन्द नदीके किनारे-किनारे चलने लगे। जाते-जाते उन्होंने नदीके किनारे एक वृक्षके नीचे पहुँचकर देखा कि एक मरी हुई स्त्री और एक जीती-जागती लड़की पड़ी है। जीवानन्दने महेंद्रकी स्त्री-कन्या को पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने सोचा, सम्भव है यही महेन्द्रकी स्त्री-कन्या हो, क्योंकि प्रभुके साथ महेन्द्र भी दिखलाई दिये थे। जो हो मां तो मरी हुई मालूम पड़ती है, पर लड़की जीती है। पहले इसकी जान बचानी चाहिये, जिसमें बाघ भालू इसे न खा जायँ। भवानन्दजी पास ही कहीं होंगे; इस लाशको जला देंगे। यह सोच कर जीवानन्द उस लड़कीको गोदमें लेकर चल पड़े।

लड़कीको गोदमें लिये हुए जीवानन्द उस घने जंगलके भीतर घुस गये। जङ्गल पारकर वे एक छोटेसे गाँवमें पहुँचे! उस गाँवका नाम भैरवीपुर था, पर लोग उसे 'भरुईपुर' कहा करते थे। उस गाँवमें थोड़ेसे मामूली हैसियतके आदमी रहते थे। उसके आसपास और कोई

गांव नहीं था। उसके बाद फिर जंगलही-जंगल था। चारों ओर जंगल था, केवल बीचमें यही एक छोटा-सा गाँव बसा था, पर छोटा होनेपर भी खूबसूरत था। कोमल घास उगी गोचरभूमि, हरे-हरे और कोमल पत्तेवाले आम, कटहल, जामुन और ताड़के पेड़ोंसे भरे हुए बाग-बगीचे, बीचमें नीले जलसे भरा हुआ स्वच्छ तालाब, जिसके जलमें बक, हंस और पनडुब्बी तथा किनारेपर कोयल और चकवा-चकई आदि पक्षी बिहार करते हैं, कुछ दूरपर मोर ऊँचे स्वरसे बोलते दिखाई पड़ते हैं! घर-घर आंगनमें गौएँ बँधी हैं। अन्दर अन्न रखनेके लिये मिट्टीकी कोठियां भी हैं। इस कालमें धान पैदा नहीं हुआ, इसलिये खाली पड़ी हैं। किसीके छप्परमें मैनाका पिंजरा टंगा है, किसीकी दीवारोंपर रंग-बिरंगे चित्र लिखे हुए हैं, किसीके आंगनमें शाक-भाजी उगी हुगी है। अन्य स्थानोंके लोग दुर्भिक्षके मारे दुखी दुबले-पतले हो रहे हैं; पर इस गाँवके लोग कुछ सुखी दिखाई दे रहे हैं; क्योंकि जंगलोंमें मनुष्यके खाने योग्य बहुतसी चीजें पैदा होतीं हैं, उन्हें लाकर इस गांवके लोग अपने प्राण और स्वास्थ्यकी रक्षा कर रहे हैं।

एक बड़े भारी आमके बगीचेके बीचमें एक छोटा-सा मकान था, जिसकी चहारदीवारी मिट्टीकी थी और चारों ओर चार घर बने हुए थे। उस घरमें गाय-बकरी हैं, एक मोर है, एक मैना है और एक तोता है। पहले एक बकरा भी था, पर उसका खाना जुटाना मुश्किल हो गया, इसीसे वह छोड़ दिया गया। एक ढेंकी भी रखी हुई है और बाहर खलिहान भी बना हुआ है। आँगनमें नीबूका एक पेड़ और एक जूही-चमेलीकी बेलें भी लगी हैं। परन्तु इस साल वे फूली नहीं। घरके बाहर बरामदेमें एक चर्खा है, किन्तु घरमें कोई बड़ा आदमी नहीं है। जीवानन्द लड़कीको गोदमें लिये हुए उसी मकानके भीतर घुस गये।

घरके अन्दर आते ही जीवानन्द सामने रखे हुए एक चर्खेको

उठाकर चलाने लगे। उस नन्हीं बालिकाने कभी चर्खेका शब्द नहीं सुना था। जबसे माँसे बिछुड़ी, वह रो रही थी, चर्खेका घर्र-घर्र शब्द सुन वह डर गयी तथा और जोरसे रोने लग गयी। उसका रोना सुनकर घरके अन्दरसे एक सत्रह-अठारह वर्षकी युवती बाहर निकली। उसने अपने दाहिने गालपर दाहिने हाथकी उंगली रखे, गरदन तिरछी करके कहा—"ऐ! यह क्या! भैया! चर्खा क्यों चला रहे हो? यह लड़की कहाँसे ले आये हो? क्या यह तुम्हारी लड़की है? फिर ब्याह किया है क्या?"

लड़कीको उस युवतीकी गोदमें देते हुए जीवानन्दने उसे एक हलकी-सी चपत मारनेके लिये हाथ उठाते हुए कहा—'पगली कहीं-की! मेरे लड़की कहाँसे आयी? मुझे भी क्या तूने ऐसा-वैसा समझ रखा है? घरमें दूध है कि नहीं?"

युवती—"दूध क्यों नहीं है? पीओगे क्या?"

जीवानन्द—"हाँ पीऊँगा।"

यह सुन, वह युवती जल्दी-जल्दी दूध गरम करने चली गयी। इधर जीवानन्द चरखा चलाते रहे। उस युवतीकी गोदमें जाते ही वह लड़की न जाने क्यों चुप रह गयी। शायद उसे फूले हुए कुसुमकी तरह सुन्दरी देखकर उसने इसे अपनी माँ ही समझ लिया था। अबतक तो वह चुप थी, पर चूल्हेकी आँच देहमें लगते ही रो उठी उसका रोना सुन जीवानन्द बोले—"अरी ओ मुंहजली निमी बन्दरी! क्या तेरा दूध अबतक गरम नहीं हुआ?" निमी बोली—"हो गया।" यह कह वह एक पत्थरके बर्तनमें दूध लिये हुई जीवानन्दके पास आयी। जीवानन्दने बनावटी क्रोध दिखलाते हुए कहा—"जीमें तो आता है कि यह दूध तेरे ऊपर फेंक दूं। तू क्या समझती थी, कि दूध मैं पीऊंगा?"

निमीने पूछी—"तब और कौन पीयेगा?"

जीवा०—"यह लड़को पीयेगी। देखती नहीं, इसे ही पिला।"

यह सुन, निमी पलथी मारकर बैठ गयी और लड़कीको गोदमें सुला, सितुहीसे दूध पिलाने लगी। यकायक उसकी आँखोंसे कई आंसू टपक पड़े! उसको एक लड़का होकर मर गया था, उसीको दूध पिलानेकी वह सितुही थी। निमीने झट अपने आँसू पोंछ हँसकर जीवानन्दसे पूछा—"भैया! यह लड़की है किसकी?"

जीवानन्दने कहा—"यह जानकर तू क्या करेगी मुंहजली?"

निमीसे कहा—"क्या इसे मुझे दे दीजियेगा?"

जीवानन्दने पूछा—"इसे लेकर क्या करेगी?"

निमीने कहा—"इसे गोदमें लेकर खिलाऊँगी, दूध पिलाऊँगी, पाल-पोस कर बड़ी करूँगी।" कहते-कहते अभागे आंसू फिर गिर पड़े। उसने फिर उन्हें पोंछ डाला और बनावटी हंसी हंसने लगी।

जीवानन्दने कहा—"तू उसे लेकर क्या करेगी? तेरे आपही न जाने कितने बाल-बच्चे होंगे।"

मिमीने कहा—"हुआ करें, अभी तो तुम मुझे इस लड़कीको दे ही दो, इसके बाद ले जाना।"

जीवानन्दने कहा—"अच्छा जा लेजा। मैं बीच-बीचमें आकर देख जाया करूँगा। यह एक कायस्थकी लड़की है। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।"

निमीने कहा—"यह क्या भैया? कुछ खाओगे नहीं? दिन बहुत चढ़ आया है। तुम्हें मेरे सिरको कसम जो बिना कुछ खाये जाओ। दो कौर खा लो, फिर चले जाना।"

जीवानन्दने कहा—"अरी पगली! मैं तेरा सिर खाऊँगा या भात? दोनों कैसे खिलायेगी? जा, सिर सलामत रहने दे, थोड़ासा भात ही खिला दे।"

यह सुन, लड़कीको गोदमें लिये निमी रसोई घरमें चली गयी।

पीढ़ा पानी रख उसने जीवानन्दको खानेके लिये बैठाया और जूहीके फूलकी तरह स्वच्छ चावलोंका भात, खट्टी मसूरकी दाल, जंगली गूलरकी तरकारी, रोह मछलीका शोरवा और दूध परोस दिया। पीढ़ेपर बैठते ही जीवानन्दने कहा—"बहन, कौन कहता है कि बड़ा भारी अकाल पड़ा है ? तेरे गांवमें तो मालूम पड़ता है कि अकालकी दाल ही नहीं गलने पायी।"

निमीने कहा—"अकाल तो खूब व्याप रहा है भैया! पर हम दोही जने खानेवाले ठहरे, इसलिये घरमें जो कुछ है, वही आप भी खाते हैं और औरोंको भी खिलाते हैं। तुम्हें याद होगा, हमारे गाँवमें वर्षा हुई थी। तुमने कहा भी था, कि जंगलमें वर्षा बहुत होती है। इसीसे हमारे यहाँ कुछ-कुछ धानकी फसल हुई थी। और लोगोंने तो अपना धान बेच दिया था, पर हमने नहीं बेचा था।"

जीवानन्दने कहा—"बननोई महाशय कहाँ गये हैं ?"

निमीने सिर नीचा कर धीरेसे कहा—"दो-तीन सेर चावल लेकर न जाने कहाँ गये हैं। शायद किसीको देने गये हैं।"

इधर बहुत दिनोंसे जीवानन्दको ऐसा बढ़िया भोजन नसीब नहीं हुआ था। इसलिये बकवादमें बहुत समय नष्ट करना अच्छा न समझकर वे गपागप अन्नव्यञ्जनको गलेके नीचे उतारने लगे। थोड़ी ही देरमें वे सारी थाली साफ कर गये। श्रीमती निमाईमणिने आज केवल अपने और स्वामीके लिये ही रसोई पकायी थी और अपना हिस्सा लाकर भाईको खानेके लिये दिया था।

थाली खाली देख उदास मनसे रसोई घरमें गयी और अपने स्वामीका हिस्सा भी लाकर जीवानन्दके आगे रख दिया। जीवानन्दने बिना किसी आपत्तिके वह सारा समान भी पेटके अन्दर डाल दिया। तब निमाईमणिने पूछा—"क्यों भैया! और कुछ खाओगे ?"

जीवानन्दने कहा—"और क्या है ?"

निमाईमणिने कहा—"एक पका हुआ कटहल पड़ा है।"

यह कह वह एक पका हुआ कटहल उठा लायी। बिना कुछ कहे जीवानन्द वह सारा कटहल सफाचट कर गये। तब निमाईने हँसकर कहा—"भैया! अब तो कोई चीज खाने लायक नहीं रही।"

भैयाने जवाब दिया—"कोई हर्ज नहीं और किसी दिन आकर खा जाऊँगा।"

अन्तमें निमाईने जीवानन्दको हाथ मुँह धोनेके लिये जल ला दिया। जल ढालते-ढालते बोली—"भैया, क्या तुम मेरी एक बात मानोगे?"

जीवा०—"कौनसी बात? कह।"

निमाई—"पहले मेरे सिरकी कसम खाओ।"

जीवा०—"अरी मुँहजली कहती क्यों नहीं?"

निमाई—"बात मानोगे न?"

जीव०—"पहले सुन तो लूं?"

निमाई—"नहीं, पहले मेरे सिरकी कसम खाओ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

जीवा०—"अच्छा, ले मैं तेरे सिरकी कसम खाता हूँ और तू मेरे पैरों पड़ना चाहती है तो वह भी कर ले, पर बात तो सुना दे।"

निमाई पहले तो कुछ देर तक सिर नीचा किये, एक हाथसे दूसरे हाथकी अँगुलियाँ चटकाती रही और कभी जीवानन्दके मुँहकी ओर और कभी नीचे जमीनकी ओर देखती रही। इसके बाद बोली—"जरा भाभीको बुला लूँ।"

यह सुनते ही जीवानन्द झारी उठाकर निमीको मारने के लिए उठ खड़े हुए और बोले,—"ला मेरी लड़की फेर दे। मैं और किसी दिन आकर तेरे दाल-चावल लौटा जाऊँगा। बन्दरी कहींकी मुँहजली कहींकी? तू सदा अण्डबण्ड बका करती है।"

निमाईने कहा—"अच्छा मैं बन्दरी सही, मुँहजली सही पर कहो तो जरा भाभीको बुला लाऊँ।"

जीवानन्द—"लो, मैं चला।" यह कह वे झटपट दौड़े हुए बाहरकी ओर चले, पर निमाईने आकर दरवाजा रोक लिया और किवाड़ बन्दकर द्वार की ओर अपनी पीठ किये हुए बोली—"पहले मुझे मार डालो, तब जाना। बिना भाभीसे भेंट किये तुम कदापि न जाने पाओगे।"

जीवा०—"क्या तू नहीं जानती कि मैंने कितने आदमियोंको मार डाला है?"

यह सुनते ही निमीको क्रोध चढ़ आया। वह बोल उठी—"आह, क्या कहने हैं! बड़ी किर्त्तिका काम कर डाला है। तुमने स्त्रीको छोड़ दिया है, बहुतसे आदमियोंको मार डाला है। इसीसे क्या मैं तुमसे डर जाऊँगी? तुम जिस बापके बेटे हो, मैं भी उसी बापकी बेटी हूँ। अगर आदमियोंकी जान लेनी भी बड़ी बड़ाईकी बात हो तो लो, मेरी भी जान लेकर नाम कमा लो।"

जीवानन्द हँस पड़े और बोले—"अच्छा जा, किस पापिनको बुलाने जाती थी? उसे बुला ला। किन्तु देख! फिर यदि ऐसी बात कहेगी तो तुझे कुछ कहूँ या नहीं, पर उसका सिर मुँड़ा, गधेपर चढ़ाकर देशसे निकाल बाहर कर दूँगा।"

निमीने मन-ही मन कहा—"तब तो मेरी भी जान बच जायगी।" और हंसती हुई बाहर चली गयी और पासवाली एक झोपड़ीके अन्दर घुस पड़ी। उस झोपड़ीके अन्दर एक स्त्री बैठी हुई चर्खा चला रही थी। उसकी देहपरके कपड़ेमें सौ-सौ पेवन्द लगे थे। उसके सिरके बाल रूखे थे। निमाईने उसके पास आकर कहा—"भाभी बस जल्दी!"

उस युवतीने कहा—"जल्दी क्या! क्या ननदोईजीने तुम्हें मारा है? देहमें तेलकी मालिश करनी होगी?"

निमी०—"कुछ ऐसी ही बात है। घरमें तेल तो होगा ही।"

यह सुन, वह स्त्री तेलका बर्त्तन निकाल लायी। निमाईने झट उस-मेंसे तेल अंजुलिमें ढाल लिया और उस स्त्रीके सिरमें तेल लगाकर मामूली तरहसे केश भी बाँध दिया। इसके बाद उसके गालमें हलकी-सी चपत लगाकर बोली—"तुम्हारी वह ढाकेकी साड़ी कहाँ है?" यह सुन वह स्त्री कुछ विस्मित होकर बोली—"तुम पागल तो नहीं हो गयी हो?"

निमीने उसकी पीठपर एक चपत जमाकर कहा—"पहले साड़ी निकाल लाओ।"

तमाशा देखनेके लिये यह स्त्री साड़ी ले आयी। हमने तमाशा देखनेकी बात इसलिये कही कि इतने दुःखमें पड़कर भी उसको तमाशा देखनेकी प्रवृत्ति नष्ट नहीं हुई थी। एक तो नयी जवानी, दूसरे नयी उमरका वह फूले हुए कमलका सा सौन्दर्य! इतने पर भी उस बेचारीको तेल-फुलेल, साज-सिंगार और आहार-विहारसे कोई सरोकार नहीं। उसका वह जगमगाता हुआ सौन्दर्य उसी सौ-सौ-पेवन्द लगे हुए कपड़ेके अन्दर ढका रहता था। उसके शरीरमें बिजली-सी चंञ्चलता, आँखोंमें कटाक्ष, मुँहपर हँसी और हृदयमें धैर्य भरा हुआ था। ठीक समयपर खाना-पीना नहीं, तो भी शरीर में लुनाई भरी हुई थी। सिंगार-पटार नहीं, तो भी अङ्ग-अङ्गसे सुन्दरता चू पड़ती थी। जैसे मेघमें बिजली, मनमें प्रतिभा, जगत्‌के समस्त प्रकारके शब्दोंमें सङ्गीत और मृत्युके भीतर सुख छिपा रहता है, वैसे ही उसकी रूप-राशिके भीतर न जाने क्या छिपा हुआ था। उसमें अनिर्वचनीय, माधुर्य अनिर्वनीय प्रेम और अनिर्वचनीय भक्ति भरी हुई थी। उसने हँसते-हँसते (वह हँसी किसीने देखी नहीं) ढाकेकी साड़ी बाहर निकाली, बोली—"लो साड़ी। इसे क्या करूँ?"

निमीने कहा—'इसे, पहन लो।'

उसने कहा—"मैं पहनकर क्या करूँगी ?"

इसपर उसके कमनीय गलेमें बाहु-लता डालकर निमाईने कहा—"भैया आये हैं। तुम्हें बुला रहे हैं।"

युवतीने कहा—"हमें बुलाया है तो ढाकेकी साड़ीकी क्या जरूरत है ? चल, इसी तरह चलूँ।"

निमाईने उसके गालमें एक चपत जमा दी। इसने निमाईके गलेमें हाथ डाल उसे झोपड़ीके बाहर कर कहा—"चलो, उन्हें यही फटी साड़ी पहने अपनी सूरत दिखा आऊँ।"

लाख कहनेपर भी उस युवतीने साड़ी नहीं पहनी। लाचार निमाई राजी हो गयी और अपनी भाभीको साथ लिये अपने घरके दरवाजेतक आयी और उसे भीतर भेज बाहरसे किवाड़ बन्द कर आप दरवाजेपर खड़ी हो रही।

सोलहवां परिच्छेद

उस स्त्रीकी अवस्था पचीस वर्षके लगभग थी। उस समय निमीसे अधिक वयसवाली नहीं मालूम पड़ती थी। जिस समय वह मैले-कुचैले वस्त्र पहने इस घरके अन्दर आयी, उस समय ऐसा मालूम पड़ा; मानो उजाला हो गया। ऐसा मालूम पड़ा मानों किसी वृक्षकी पत्तोंसे ढकी हुई कलियाँ एक साथ खिल गयीं, मानो बन्द गुलाबजलके फवारेका मुँह किसीने खोल दिया, मानों किसीने बुझती हुई आगमें धूप और गुग्गुल डाल दिया। वह रमणी घरमें प्रवेशकर चारों ओर अपने स्वामी को ढूँढ़ने लगी। पहिले तो उन्हें नहीं देखा, पर थोड़ी देर बाद देखा कि आँगनमें आमके छोटे पेड़के सोरपर सिर रखे जीवानन्द रो रहे हैं। सुन्दरीने इनके पास पहुँचकर धीरे-धीरे इनका हाथ अपने हाथमें ले लिया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसकी आँखोंमें जल आया ही नहीं, पर उसने उसे बाहर नहीं होने दिया,

क्योंकि परमात्मा जनता है कि जो सोता उसकी आँखोंसे जारी हुआ चाहता था, वह यदि निकल पड़ता तो जीवानन्द उसमें डूब जाते। लेकिन उसने उसे बहने न दिया। जीवानन्दका हाथ अपने हाथमें लेकर उसने कहा—"हैं। रोते क्यों हो? मैं जानती हूँ कि तुम मेरे ही लिये रो रहे हो पर मेरे लिये रोनेका कोई काम नहीं है। तुमने मुझे जिस अवस्थामें रख छोड़ा है, मैं उसीमें सुखी हूँ।"

जीवानन्दने सिर ऊपर उठाया, आँखें पोंछकर पूछा—"शान्ति! तुम्हारे बदनपर यह जीर्ण-शीर्ण फटा कपड़ा क्यों? तुम्हें तो खाने-पहननेका कोई दुःख नहीं है?"

शान्तिने कहा—"तुम्हारा ऐश्वर्य तुम्हारे लिये है मैं क्या जानूँ कि रुपया-पैसा किस काम आता है। जब तुम घर फिर आओगे, मुझे ग्रहण करोगे।"

जीवा०—"ग्रहण करना! क्या मैंने तुम्हें त्याग दिया।"

शान्ति—"त्याग नहीं दिया—तो भी जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा और तुम फिर मुझे स्नेह करने लगोगे"—बात पूरी भी न होने पायी थी कि जीवानन्दने शान्तिको गलेमें लगा लिया और उसके कन्धेपर सिर रख बड़ी देरतक चुप रहे। फिर लम्बी साँस लेकर बोले—"हाय, मैंने क्यों मुलाकात की!"

शान्ति—"क्यों की? इससे तुम्हारा व्रत भङ्ग हो गया।"

जीवा०—हुआ करे। इसका प्रायश्चित्त भी तो है? इसकी चिन्ता मुझे नहीं है, पर तुम्हें देखकर तो अब मुझसे जाया नहीं जाता। मैं इसीसे निमाईसे कह रहा था कि मिलने-मिलानेका काम नहीं है, क्योंकि तुम्हें देखनेके बाद मुझसे घर नहीं छोड़ा जायगा। एक ओर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जगत, संसार, व्रत, होम, योग, यश सब कुछ और दूसरी तरफ तुम अकेली रहो; तो भी मैं निश्चय नहीं कर सकता कि कौन पलड़ा भारी है। देश तो शान्त है; देशको लेकर मुझे क्या

करना है ? देशकी एक कट्ठा भूमि पर जाऊँ तो तुम्हें लेकर मैं वहीं स्वर्गकी रचना कर सकता हूँ। फिर मुझे देशसे क्या काम है ? देशके लोग दुःखी हैं—रहें। पर जिसने तुम सी सती पाकर भी त्याग कर दी है; उससे बढ़कर दुखिया देशमें और कौन होगा ? जो तुम्हारे इस कोमल शरीरपर सौ-सौ पेवन्द लगे हुए कपड़े देखता है; उससे बढ़कर दरिद्र इस देशमें कौन होगा ? तुम मेरी सहधर्मिणी हो। मैं तुम-सी सहायकको छोड़ देश विदेश, जङ्गल-जङ्गल भटकता जीवहत्या कर अपने ऊपर पापका बोझ लाद रहा हूँ ? पृथ्वीपर सन्तानोंका राज्य होगा या नहीं, नहीं कहा जा सकता; पर तुम तो मेरे हाथमें ही हो। तुम पृथ्वीकी अपेक्षा कहीं बड़ी हो—तुम मेरे लिये साक्षात् स्वर्ग हो। चलो घर चलें। अब मैं लौटकर वहाँ न जाऊँगा।"

शान्तिके मुँहसे कुछ देरतक बात न निकली। फिर बोली—'छिः! तुम वीर पुरुष होकर ऐसी बातें करते हो ? मुझे तो इस संसारमें यही सबसे बढ़कर सुखकी बात मालूम होती है कि मैं वीर-पत्नी हूँ! तुम एक अधम नारीके लिये अपना वीर-धर्म त्याग करते हो ? तुम मुझे प्यार करो—मुझे वह सुख नहीं चाहिये, पर तुम अपना वीर-धर्म कदापि न छोड़ो। हाँ, एक बात और है, इस व्रत-भङ्गका प्रायश्चित्त क्या है ?"

जीवानन्दने कहा—"प्रायश्चित्त है दान, उपवास और १२ * काहन कौड़ी।

यह सुन, शान्ति मुसकुराते हुए बोली—"प्रायश्चित्त क्या है सो मैं जानती हूँ, पर एक अपराध करनेपर जो प्रायश्चित्त करना होता है, वही क्या सौ अपराधोंके लिये भी करना होता है ?"

जीवानन्दने आश्चर्य और उदासीके साथ कहा—"यह सब बातें किसलिये पूछ रही हो ?"

* एक काहनमें एक एक रुपयेकी कौड़ियाँ होती हैं।

शान्ति—"मैं एक भिक्षा माँगती हूँ। मुझसे मिले बिना प्रायश्चित्त न करना।"

यह सुन, जीवानन्दने हँसकर कहा—"इस बारेमें तुम निश्चित रहो। मैं तुमसे मिले बिना नहीं मरूँगा। मरनेकी वैसी कुछ जल्दी भी नहीं पड़ी है। अब मैं यहाँ न ठहरूँगा। इस बार तुम्हें जीभर देखने नहीं पाया, पर किसी दिन यह साध अवश्य पूरी करूँगा। एक दिन हमारी मनोकामना अवश्य ही पूरी होगी। अब मैं चला, पर मेरा एक अनुरोध है, उसे मान लेना। यह फटे पुराने वस्त्र छोड़ दो और मेरे पैतृक घरमें ही जाकर रहो।"

शान्तिने पूछा—"इस समय तुम यहाँसे कहाँ जाओगे?"

जीवानन्द—"अभी तो मठमें जाकर ब्रह्मचारीजीका पता लगाना है। उन्हें जिस हालतमें शहरकी ओर जाते देखा है उससे मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी है। अगर वे मन्दिरमें न मिले तो उन्हें ढूँढ़नेके लिये शहर जाऊँगा।"

—:❀:—

सत्रहवां परिच्छेद

भवानन्द मठके भीतर बैठे हरि-गुण-गान कर रहे थे। इस समय ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी सन्तान उदास मुँह उनके पास आ खड़े हुए। भवानन्दने कहा—"गुसाईंजी! ऐसा उदास चेहरा क्यों बनाये हुए हो?"

ज्ञानानन्द—"कुछ गोलमाल हुआ-सा मालूम पड़ता है। कलकी घटनाके कारण मुसलमान जहाँ कहीं गेरुआ कपड़ा देखते हैं वहीं धर-पकड़ करने लगते हैं। अन्य सन्तानोंने तो गेरुआ वस्त्र उतार फेंके। केवल सत्यानन्द प्रभु गेरुआ पहने हुए शहरकी ओर गये हैं। कहीं वे मुसलमानोंके फन्देमें न पड़ जायँ।"

भवानन्द—"उन्हें पकड़ रखे, ऐसा कोई मुसलमान इस बंगाल प्रान्तमें नहीं पैदा हुआ। मैंने सुना है कि धीरानन्द उनके पीछे पीछे गये हैं। तो भी मैं जरा शहरतक घूम आना चाहता हूँ, तुम मठकी रखवाली करो।"

यह कह भवानन्दने एक सुनसान कमरेमें जा एक बड़े भारी सन्दूकमेंसे कई तरहके कपड़े बाहर निकाले। सहसा भवानन्दका रूप ही औरका और हो गया! गेरुआ कपड़ोंके स्थानमें चूड़ीदार पायजामा, अचकन, चोगा, सिरपर अम्मामा और पैरोंमें नागौरी जूते शोभा देने लगे। ललाटसे त्रिपुण्डके चिह्न दूर हो गये, भौंरेकी तरह काली-काली दाढ़ी, मूछोंसे घिरा हुआ सुन्दर मुख-मण्डल अपूर्व शोभा दिखाने लगा। उस समय वे मुगल नवजवान मालूम पड़ने लगे। इस तरह मुगलका वेश बना हथियारसे लैस होकर वे मठसे बाहर निकले। वहाँ-से कोस डेढ़ कोसकी दूरीपर दो नीची पहाड़ियाँ थीं। इन पहाड़ोंपर खूब घने जंगल थे। उन दोनों पहाड़ियोंके बीचमें एक सुनसान स्थान था। वहाँ बहुतसे घोड़े बँधे थे। वही मठवासियोंकी अश्वशाला थी। उन्हीं घोड़ोंमेंसे एकपर सवार हो भवानन्द नगरकी ओर चल पड़े।

जाते-जाते वे सहसा एक जगह ठिठक गये। उन्होंने देखा कि कलनादिनी तरंगिणीके तीरपर आसमानसे गिरे हुए नक्षत्रकी भाँति मेघसे बिछुड़ी हुई बिजलीकी नाई दमकती कान्तिवाली एक स्त्री पड़ी है। उन्होंने यह भी देखा कि उसके शरीरमें जीवनका कोई चिह्न नहीं है और पास ही जहरकी डिबिया पड़ी है। भवानन्द विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। जीवानन्दकी ही तरह भवानन्दने भी महेन्द्रकी स्त्री और कन्याको कभी नहीं देखा था। जीवानन्दने जिन कारणोंसे उनपर महेन्द्रकी स्त्री-कन्या होनेका संदेह किया था वे कारण भवानन्दके सामने उपस्थित नहीं थे। एक तो उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्रको कैद होकर जाते नहीं देखा था, दूसरे लड़की भी वहाँ नहीं थी। डिबिया देखकर

उन्होंने अनुमान किया कि कोई स्त्री विष खाकर मर गयी है। यही सोच कर वे उस शवके पास चले आये और उसके सिरपर हाथ रखकर देरतक कुछ सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने उसके सिर, बगल, पांजर हाथ आदिपर हाथ रखकर देखा और अनेक प्रकारसे परीक्षा की जो साधारण लोग नहीं जानते। तब उन्होंने मन-ही-मन कहा—"अब भी समय है पर इसे बचाकर ही क्या करूँगा?"

इसी प्रकार भवानन्दने बड़ी देरतक सोच-विचार किया। इसके बाद जंगलमें जाकर वे एक वृक्षके बहुत-से पत्ते तोड़ लाये। उन्होंने उन्हें हाथसे ही मलकर उनका रस निचोड़ा और उस मुर्देके ओठमें अंगुली डाल, उसीके सहारे वह रस उसके गलेके नीचे उतारने लगे। इसके बाद उन्होंने थोड़ा-सा रस उसकी नाकमें भी टपकाया और कुछ हाथ पैरोंमें भी मल दिया। ये बार-बार ऐसा ही करने और रह-रहकर उसकी नाकके पास हाथ ले जाकर देखने लगे कि सांस चलती है या नहीं। उन्हें मालूम पड़ा, मानों उनका यत्न विफल हुआ चाहता है। इस प्रकार बहुत देरतक परीक्षा करते रहनेके बाद भवानन्दका चेहरा खिल उठा, क्योंकि उनकी अँगुलीमें धीरेसे साँस चलनेकी हवा लगी। अब तो वे और भी रस निचोड़-निचोड़कर उसे पिलाने लगे। क्रमसे जोर जोरसे साँस चलने लगी। अब नाड़ीपर हाथ रखकर भवानन्दने देखा कि नाड़ी चल रही है। अन्तमें पूर्व दिशाके प्रथम अरुणोदयकी नाईं प्रभातके खिलते हुए कमलकी तरह तथा अनुरागके प्रथम अनुभवकी भाँति कल्याणीने धीरे-धीरे आँखें खोल दीं। यह देख भवानन्द उस अधमरी देहको घोड़ेपर चढ़ा जल्दीसे नगरकी ओर चले।

अठारहवां परिच्छेद

साँझ होते-होते समस्त संतान-सम्प्रदायमें यह बात फैल गयी कि सत्यानंद ब्रह्मचारी और महेन्द्रसिंह बन्दी होकर नगरके कैदखानेमें बन्द हैं। यह सुनते ही एक-एक दो दो, दस-दस, सौ-सौ करके संतान-सम्प्रदायके लोग उस मन्दिरके चारों तरफवाले जङ्गलमें आकर इकट्ठे होने लगे। सभी हथियारबन्द थे। सबकी आँखोंमें क्रोधकी आग जल रही थी; मुखसे दम्भ प्रकट हो रहा था और होठोंपर दृढ़ प्रतिज्ञाकी छाया थी। पहले सौ आये; पीछे हजार, फिर दो हजार हो गये। इसी तरह उनकी संख्या बढ़ती गयी। यह देख मठके द्वारपर खड़े होकर ज्ञानानन्द तलवार हाथमें लिये ऊँचे स्वरसे कहने लगे—"हम लोगोंने बहुत दिनोंसे यह इरादा कर रक्खा है कि यह नवाबी इमारत, यह यवनपुरी ढाहकर नदीमें फेंक देंगे। इन शूकरोंके खोभारमें आग लगाकर माता वसुमतीको फिर पवित्र करेंगे। भाई! आज वही दिन आ पहुँचा है। हमारे गुरुके गुरु, परम गुरु, अनन्त ज्ञानमय, सदा शुद्धाचारी, लोकहितैषी, देशहितैषी पुरुष जिन्होंने सनातन धर्मके पुनः प्रचारके लिये अपना जीवन ही दे रखा है, जिन्हें हमलोग विष्णुका अवतार मानते हैं, जो हमारी मुक्तिके द्वार हैं, वे ही आज मुसलमानोंके कैदखानेमें पड़े हैं। क्या हमारी तलवारमें धार नहीं रह गयी है? (हाथ उठाकर)—क्या हमारी इन भुजाओंमें बल नहीं रहा? (फिर छाती ठोंककर)—क्या इस हृदयमें साहस नहीं रह गया? भाइयो! बोलो—"हरे मुरारे मधुकैटभारे!" जिन्होंने मधुकैटभका नाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरोंको मार गिराया है, जिनके चक्रके घर्घर निर्घोषको सुनकर मृत्युको जीतनेवाले शम्भु भी डर जाते हैं, जो अजय हैं; रणमें जय देनेवाले हैं; हमलोग उन्हींके उपासक

हैं; उन्हींके बलसे हमारी भुजाओंमें अनन्त बल वर्त्तमान है। वे इच्छामय हैं; उनके इच्छा करते ही हमलोग लड़ाई जीत लेंगे। चलो; हमलोग अभी उस यवनपुरीको तहस-नहस कर डालें और धूलमें मिला दें। उस शूकरनिवासको आगसे जलाकर पानीमें बहा दें। वह पंछीका घोसला उजाड़कर उसके सब खर पात हवामें उड़ा दें। बोलो—"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

उस समय उस जङ्गलमें अतिभीषण नादसे सहस्रों कंठ एक साथ ही कह उठे—"हरे मुरारे मधुकैटभारे !" साथ ही हजारों तलवारें एक ही साथ झनझना उठीं। सहस्रों भालोंकी नोकें एक ही साथ चमचमा उठीं। सहस्रों भुजाओंके परिचालनसे वज्रका-सा शब्द होने लगा। हजारों युद्धके नगाड़े बज उठे। जंगलके पशु डरके मारे महा कोला-हल करते हुए भाग चले। पक्षी जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए आस-मानमें उड़ गये। उसी समय सैकड़ों मारू बाजे बजाते और "हरे मुरारे मधुकैटभारे" की आवाज लगाते हुए सन्तानगण कतार बाँधकर जंगल से बाहर होने लगे। धीर-गम्भीर पदविक्षेप करते और ऊँचे स्वरसे हरि नामका उच्चारण करते हुए वे लोग उसी अंधेरी रातमें नगरकी ओर बढ़े। वस्त्रोंका मर्मर शब्द, अस्त्रोंकी झनकार, सहस्रो कंठोंका अस्फुट निनाद और बीच बीचमें "हरे मुरारे" का तुमुल रव होता रहा। धीर, गंभीर, सन्तोष और सतेज भावसे चलती हुई वह सन्तान सेना क्रमसे नगरमें आ पहुँची और नगरवासियोंके मनमें भय उत्पन्न करने लगी। इस आकस्मिक विपत्तिसे भयभीत हो लोग इधर-उधर भाग चले। नगर-रक्षक तो अवाक् रह गये।

सन्तानोंने सबसे पहले सरकारी जेलखानेमें जाकर उसे तोड़ डाला। वहाँके पहरेदारोंको मार, सत्यानन्द और महेन्द्रको छुड़ा उन्हें कन्धेपर बैठाकर नाचने-कूदने लगे। उस समय हरिनामका भजन और भी जोर-जोरसे होने लगा। सत्यानन्द और महेंद्रको छुड़ानेके बाद वे जहाँ कहीं

मुसलमानोंका घर देख पाते, उसमें आग लगा देते थे। यह देख सत्यानन्दने कहा—"चलो, लौट चलो। व्यर्थ उपद्रव करनेका कोई काम नहीं है।"

सन्तानोंके इस उपद्रवका सम्वाद पाकर देशके शासकने उनके दमनके लिये सैनिकोंका एक दल भेजा, जिनके पास केवल बन्दूकें ही नहीं, एक तोप भी थी। इनके आनेकी खबर पाते ही सन्तानगण उस जंगलसे निकलकर युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। लेकिन तोपके आगे लाठी, बर्छी या बीस पच्चीस बन्दूकोंकी क्या बिसात थी?

सन्तानगण, पराजित हो; भागने लगे।

आनन्दमठ

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

—:०ꕥ०:—

बड़ी ही छोटी उमरमें शांतिकी माँ मर गयी थी। जिन अवस्थाओं-में शान्तिका चरित्र गठन हुआ था, उनमें एक प्रधान यह है कि उसके पिता पण्डित और अध्यापक थे। उनके घरमें और कोई स्त्री नहीं थी।

शान्तिके पिता जब पाठशालामें पढ़ाने जाते तो शान्ति भी उन्हींके पास बैठी रहती थी। पाठशालामें बहुतसे लड़के रहते थे। जब पाठका समय न रहता, शान्ति उन लोगोंके साथ खेलती-कूदती थी, किसीके कन्धेपर चढ़ती तो किसीकी गोदमें बैठ जाती। वे लोग भी शान्तिको बहुत प्यार करते थे।

इस प्रकार लड़कपनसे ही पुरुषोंके संसर्गमें रहनेका पहला फल तो यह हुआ कि शान्तिने स्त्रियोंकी तरह कपड़ा पहनना नहीं सीखा अथवा यों कहिये, कि सीखकर भी भूल गयी। वह ठीक पुरुषोंकी तरह लुंगी कसने लगी। यदि कोई उसे लड़कियोंकी तरह कपड़ा पहना देता; तो वह उसे झट खोल देती और फिर मर्दानी धोती पहन लेती थी। पाठशालाके विद्यार्थी सिरके बाल नहीं बाँधते, इसीलिये वह भी बालोंको खोले रहती थी। विद्यार्थी लोग उसके बालोंको लकड़ीकी कंघीसे संवार देते थे। उसके वे घुंघरवाले बाल उसकी पीठ, कन्धों, भुजाओं और गालोंपर लहराते रहते थे। छात्रगण ललाटमें चन्दन लगाकर बीचमें लाल बिन्दी लगाते थे। इसलिये शान्ति भी वैसा ही करती थी। उसे कोई यज्ञोपवीत पहननेको नहीं देता था। इसलिये वह बहुत रोया करती थी। परन्तु संध्यापूजनके समय छात्रोंके पास बैठकर वह उनका अनुकरण जरूर करती थी। छात्रगण अध्यापकजीके न रहनेपर अश्लील संस्कृतकी थोड़ीसी बघार देकर कुछ श्रृंगाररसकी

बातें छेड़ दिया करते थे। शान्ति भी तोतेकी तरह उन्हीं बातोंको कहने लगती थी; पर तोतेकी तरह वह भी उन बातोंका अर्थ नहीं समझती थी।

दूसरा फल यह हुआ; कि शान्ति जब कुछ बड़ी हुई, तब विद्यार्थी लोग जो कुछ पढ़ते थे, उसे पढ़ने लगती थी। व्याकरण वह भले ही एक अक्षर न जानती हो, तो भी भट्टि, रघुवंश, कुमार, नैषध आदिके श्लोकोंको व्याख्या सहित याद करने लगी। यह सब देख-सुनकर शांतिके पिता भाग्यपर विश्वासकर उसे मुग्धबोध पढ़ाने लगे, शांति बहुत जल्दी-जल्दी पढ़ने लगी। यह देख अध्यापकजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने व्याकरणके साथ-साथ साहित्यके भी दो एक ग्रन्थ पढ़ाये। इसके बाद ही सारा मामला उलट-पुलट गया। उसके पिताका परलोकवास हो गया।

शन्ति निराश्रय हो गयी, पाठशाला टूट गयी। छात्र अपने-अपने घर चले गये, पर उनमेंसे कुछ उसे बहुत प्यार करते थे, इसलिए उनसे शान्तिको छोड़कर जाते नहीं बना। उनमेंसे एक दया करके उसे अपने घर ले गये। यही आगे चलकर सन्तान-सम्प्रदायमें जा मिले और जीवानन्द कहलाने लगे। हम भी सदा जीवानन्द ही कहा करेंगे।

उस समय जीवानन्दके माता-पिता जीवित थे। जीवानन्दने उनसे उस कन्याका सारा हाल कह सुनाया। माता-पिताने पूछा—"इस समय इस परायी लड़कीका बोझ कौन अपने सिरपर लेगा?"

जीवानन्दने कहा—"मैं इसे ले आया हूँ मैं ही इसका भार उठाऊँगा।"

माँ-बापने कहा—"अच्छा, यही सही।"

जीवानन्द उस समयतक क्वारे थे। शान्ति भी ब्याह करने योग्य हो गयी थी, अतएव जीवानन्दने उसके साथ अपना विवाह कर लिया।

विवाहके बाद सब लोग हाथ मल-मलकर पछताने लगे। सभी समझ गये कि यह काम अच्छा काम नहीं हुआ। शान्तिने किसी तरह भी स्त्रियोंके-से

कपड़े नहीं पहने, सिरके बाल नहीं बांधे। वह घरमें रहकर पड़ोसके बालकोंके साथ खेला करती थी। जीवानन्दके घरके पास ही जंगल था। शान्ति जंगलमें जा हरिण और दुर्लभ फल और फूलोंको खोजा करती। सास-ससुरने पहले तो मना किया, पीछे डाँट-डपट की, इसके बाद मारा-पीटा और अन्तमें उसे घरमें बन्द करके सांकल चढ़ा दी! इस प्रकारके अत्याचारसे शान्ति ऊब उठी। एक दिन दरवाजा खुला था। यह बिना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप घरसे बाहर हो गयी।

जंगलके भीतर जा उसने चुन-चुनकर फूल तोड़े और उन्हींके रस-में कपड़े रंगकर उसने नवजवान संन्यासीका रूप बनाया। उन दिनों सारे बंगालमें दल-के दल संन्यासी फिरा करते थे। शान्ति भीख माँगती खाती जगन्नाथजीके रास्तेमें जा पहुँची। थोड़े ही दिन बाद वहाँ संन्यासियोंका एक दल आ पहुँचा। शान्ति भी उसी दलमें मिल गयी।

उस समयके संन्यासी आजकलके संन्यासियोंकी तरह नहीं थे। वे सुशिक्षित, बलवान और अनेक गुणोंसे युक्त होते थे, और दल बाँध-कर चलते थे। वे एक प्रकारसे पक्के राजविद्रोही थे। सरकारी खजाना लुट खाना उनका काम था। वे हृष्ट-पुष्ट बालकोंको चुरा ले जाते थे और उन्हें खूब पढ़ा-लिखाकर अपने दलमें मिला लेते थे। इससे लोग उन्हें "लड़िकधरवा" कहा करते थे।

शान्ति बालक संन्यासीके रूपमें ऐसे ही एक दलमें जा मिली। पहले तो वे लोग उसके कोमल शरीरको देखकर उसे अपने दलमें मिलाना नहीं चाहते थे, पर पीछे उसकी बुद्धिकी प्रखरता; चतुरता और कार्यदक्षता देख, उन्होंने उसे बड़े आदरसे दलमें मिला लिया। शान्ति उनके साथ रहकर कसरत करती और हथियार चलाना सीखती थीं, इसीसे वह धीरे-धीरे बड़ी मिहनती हो गयी। उनके साथ रहकर उसने बहुत-से देश देखे, बहुत-सी लड़ाइयाँ देखी। वह हथियार चलाने-में भी निपुण हो गयी।

क्रमशः उसमें जवानीके चिह्न दिखाई देने लगे। बहुतसे संन्यासियोंको यह मालूम हो गया कि यह तो वेश बदले कोई स्त्री है पर संन्यासी लोग आमतौरसे जितेन्द्रिय हुआ करते हैं। इसीसे किसीने उससे कुछ नहीं कहा।

संन्यासियोंमें बहुतसे पण्डित भी थे। शान्तिको संस्कृतमें व्युत्पन्न देखकर एक पण्डित संन्यासी उसे पढ़ाने लगे।

हम पहले लिख आये हैं आमतौरसे संन्यासी लोग जितेन्द्रिय हुआ करते हैं पर सभी ऐसे नहीं होते। ये पण्डितजी भी वैसे नहीं थे अथवा हो सकता है कि शान्तिकी नयी जवानीकी उमङ्गसे खिले लावण्यको देखकर मुग्ध हो गये हों और इन्द्रियां उन्हें सताने लगी हों। उन्होंने अपनी शिष्याको शृंगाररसके काव्य पढ़ाने आरम्भ किये और जो व्याख्या सुनाने योग्य न भी होती उसे भी सुनाने लगे। उससे शान्तिको कुछ हानि तो नहीं हुई, भलाई हुई। अबतक शान्ति यह नहीं जानती थी कि लज्जा किसे कहते हैं? अब स्त्री स्वभाव सुलभ लज्जा आपही आ उपस्थित हुई। पुरुषचरित्रके ऊपर निर्मल स्त्री-चरित्रकी अपूर्व आभा शान्तिके गुणोंको और भी चमकाने लगी। शान्तिने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याध जिस प्रकार हरिणीके पीछे दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार शान्तिके अध्यापक भी उसके पीछे दौड़ने लगे। शान्तिने व्यायाम आदिके द्वारा पुरुषोंसे भी अधिक बल सञ्चय कर लिया था, इसलिये वह अध्यापकजीके पास आते ही थप्पड़ों और घूंसोंसे उनकी पूजा करने लगती थी, वे थप्पड़ और घूँसे भी हलके नहीं होते थे, खूब तौल-तौलकर लगाये जाते थे। एक दिन संन्यासीजीने शान्तिको अकेलेमें पाकर जबरदस्ती उसका हाथ पकड़ लिया। शान्ति किसी तरह अपना हाथ न छुड़ा सकी, किन्तु संन्यासीके दुर्भाग्यसे वह शान्तिका बायां हाथ था, इसलिये उसने दाहिने हाथसे संन्यासीके सिरमें इस

जोरका घूंसा मारा कि वे मूर्छित हो गिर पड़े। उसी दिन शान्ति संन्यासी दल छोड़कर भाग गयी।

शान्ति बड़ी निडर थी। वह अकेली ही अपने देशकी ओर भाग चली। साहस और बाहुबलके प्रभावसे वह निर्विघ्न रही भीख माँगती और जंगली फलोंसे उदर-पोषण करती, मारपीट कर लोगोंको परास्त करती, वह ससुरालमें आ पहुँची। यहाँ आकर उसने देखा कि ससुर स्वर्गवासी हो गये हैं। उसकी सासने जातिच्युत होनेके डरसे उसे अपने घरमें न रखा शान्ति घरसे बाहर चली गयी।

जीवानन्द घरपर ही थे। वे भी शान्तिके पीछे लगे। उन्होंने बीच रास्तेमें उसे जा पकड़ा और उससे पूछा—"तुम क्यों घरसे भाग गयी थी? इतने दिन कहाँ थी?"

इसके उत्तरमें शांतिने सब कुछ सच-सच सुना दिया। जीवानन्द-को सच-झूठकी अच्छी पहचान थी। उन्होंने शांतिकी बातोंपर विश्वास कर लिया।

अप्सराओंकी-सी बाँकी भौंहोंवाली तिरछी चितवनकी ज्योति लेकर जो 'सम्मोहन' नामका तीर बड़े यत्नसे बनाया गया है, उसे कामदेव विवाहित दम्पतिके लिये व्यर्थ ही खर्च करना नहीं चाहते। अंग्रेज पूर्णिमाकी रातमें भी सड़कोंपर गैसबत्ती जलाते हैं; बंगाली जिसके सिरमें तेल लगा होता है, उसीके सिरमें और तेल लगाते हैं—मनुष्योंकी बात तो दूर किनार, चन्द्रदेव सूर्यदेवके बाद ही आकाशमें उदित हुआ करते हैं, इन्द्र समुद्रमें ही वृष्टि करता है, जिस सन्दूकमें रुपये भरे होते हैं, कुबेर उसीमें और रुपये डाल देते हैं। यमराज जिसके सब किसीको चौपट कर चुके होते हैं, उसीके बाकी बचे हुए लोगोंको भी उठा ले जाते हैं। केवल कामदेव ही ऐसी निबुद्धिताका काम करते हुए नहीं दिखाई पड़ते। जहाँ गठजोड़ा बँधा कि उन्होंने वहाँ परिश्रम करना छोड़ दिया। वहाँका भार प्रजापतिको देकर वे

ऐसी जगह चले जाते हैं जहाँ वे किसीके हृदयका रक्तपान कर सकें। परंतु आज शायद पुष्पधन्वाको और कोई काम नहीं था, इसीसे उन्होंने दो-पुष्पवाणोंका अपव्यय कर डाला। एक तो आकर जीवानन्दके कलेजेमें चुभ गया और दूसरा शांतिके हृदयमें। उसीने शान्तिको आज पहले पहल इस बातका बोध कराया कि उसका हृदय स्त्रीका ही हृदय है—बड़ो ही कोमल वस्तु है। नवमेघके प्रथम जल-कणोंसे सींची हुई फूलकी कलीकी तरह शान्ति एकाएक खिल गयी और आनन्द भरी आँखोंसे जीवानन्दके मुखकी ओर देखने लगी।

जीवानन्दने कहा—"मैं तुम्हें नहीं छोड सकता। देखो, जबतक मैं लौटकर नहीं आता तबतक तुम यहाँ खड़ी रहना।"

शांति ने कहा—"तुम लौटकर आओगे तो?"

जीवानन्दने कुछ उत्तर न दे, बिना किसी ओर देखे, उसी राहके एक तरफवाले नारियलके कुञ्जमें चुपकेसे शान्तिके होंठ चूम लिये। आज मानों अमृत ही पानेको मिल गया, यह सोचते हुए वे घर चले आये।

जीवानन्द माँको समझा-बुझाकर उनसे बिदा माँग चले आये। भैरवीपुरमें उनको बहन निमाईका व्याह हुआ था। बहनोईके साथ उनकी बड़ी गहरी दोस्ती थी। इसलिये वे शान्तिको लिये हुए वहीं जा धमके। उनके बहनोईने उन्हें थोड़ी-सी जमीन दी, जिसमें एक झोपड़ी बनाकर वे शान्तिके साथ सुखसे रहने लगे। स्वामीके साथ रहते-रहते शांतिके चरित्रमें जो मर्दानगी थी, वह धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। रमणी-के रमणोय चरित्रका नित्य नया विकास होने लगा। पहले कुछ दिनों-तक तो उसका जीवन एक सुख-स्वप्नकी तरह बीता, पर यकायक सुख-स्वप्न टूट गया। जीवानन्द सत्यानन्दके हाथमें पड़ गये और सन्तान धर्म ग्रहण कर शान्तिको छोड़कर चल दिये। इस परित्यागके बाद निमाईकी बदौलत जो प्रथम साक्षात् इन दोनों स्त्री-पुरुषका हुआ था, उसका हाल पिछले परिच्छेदमें वर्णन किया गया है।

दूसरा परिच्छेद

—०✱०—

जीवानन्दके चले जानेपर शान्ति निमाईके घरके बरामदेमें जा बैठी। निमाई भी गोदमें उस लड़कीको लिए हुए वहाँ आ बैठी। इस समय शान्तिकी आँखोंमें आँसू नहीं थे। वह आँखें पोंछ बनावटी हँसी-से मुसकुरा रही थी। हाँ, कुछ कुछ गम्भीर चिन्तायुक्त और अनमनी अवश्य हो रही थी। निमाई समझ गयी, बोली—"खैर, किसी तरह मिलना तो हुआ।"

शान्ति कुछ न बोली, चुपचाप रही। निमाईने देखा कि शान्ति अपने दिलकी बात न कहेगी। उसे यह भी मालूम था कि शान्तिको मनकी बात कहना पसन्द नहीं, इसलिये उसने जान-बूझकर दूसरी चर्चा छेड़ दी, बोली—"बहू! लड़की कैसी है?"

शान्तिने कहा—"यह छोकड़ी तुम्हें कहांसे मिली? तुम्हें लड़की कब हुई।"

निमाई—"क्या मुसीबत है! तुमको यमराज उठा क्यों नहीं ले जाते! भाभी! यह लड़की तो भैया की है।"

निमाईने शान्तिका जी दुखानेके लिये यह बात नहीं कही थी। उसका मतलब यही था कि इस लड़कीको भैया ले आये हैं। शान्ति यह न समझी—उसने सोचा कि निमाईने मेरे कलेजेमें नश्तर चुभानेके लिये यह बात कही है, इसीसे बोल उठी—"मैंने लड़कीके बापके बारे-में नहीं पूछा था। माँकी बात पूछी थी।"

उचित दण्ड पाकर निमाई झुँझला उठी। बोली—"भाई! मैं क्या जानूँ यह लड़की किसकी है। भैया न जाने कहांसे उठा लाये हैं—मुझे सब हाल पूछनेका अवसर भी न मिला। आजकल देख रही हो कि घोर अकाल पड़ा हुआ है। कितने लोग अपने बाल-बच्चों-

को रास्तेपर फेंककर भागे जा रहे हैं। कितने ही आदमी तो हमारे ही घर अपने बच्चोंको बेचनेके लिये आये, पर हमने यही सोचकर किसी-को नहीं खरीदा कि पराये बेटी-बेटेका बोझा कौन अपने सिर लेने जाय?" यह कहते-कहते नीमीके आँखोंमें फिर आँसू भर आये। उन्हें पोंछकर वह फिर कहने लगी—"लड़की बड़ी सुन्दर है, बड़ा बढ़िया चाँदसा मुखड़ा है, इसीसे मैंने इसे भैयासे माँग लिया।"

इसके बाद शान्तिने बड़ी देरतक निमाईके साथ बातें कीं और निमाईके स्वामी जब घर आये तब वहांसे उठकर अपनी कुटियामें चली गयी। यहाँ पहुँच दरवाजा बन्दकर उसने चूल्हेके भीतर थोड़ी-सी राख निकाली और बाकी राखपर अपने लिये पकाये हुए भात फेंक दिये। इसके बाद वह बड़ी देरतक खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही। फिर आप ही आप बोल उठी—"इतने दिनसे जो सोच रखा था, उसे आज पूरा करूँगी। जिस आशापर मैंने आजतक वह काम नहीं किया था वह पूरी हो गयी, पर उसे पूरी हुई कहना चाहिए या नष्ट हुई? नष्ट। यह जीवन ही सारा व्यर्थ हुआ। जिस बातका मैं संकल्प कर चुकी हूँ, उसे तो पूरा करूँगी ही। जो प्रायश्चित्त एक बार किया वही सौ बार भी सही।"

यही सब सोच-विचारकर उसने चूल्हेमें भात फेंक दिया और जङ्गलसे फल तोड़ लायी। अन्नके बदले उसने वही फल खाये। इसके बाद जिस ढाकेकी साड़ीपर निमाई इतनी लट्टू थी, उसे बाहर निकाल-कर उसने उसकी किनारी फाड़ डाली और उसे पक्के गेरुए रङ्गमें रङ्ग डाला। यह सब करते-करते सन्ध्या हो गयी। सन्ध्या हो जानेपर घरके किवाड़ बन्दकर शान्ति एक अद्भुत व्यापारमें प्रवृत्त हुई। उसने कैंची लेकर अपने घुटनेतक लटकनेवाले रूखे बाल काट डाले। जो कुछ बचे, उन्हें लपेटकर जटा बना ली। रूखे बाल अजीब तरहसे जटासे बना लिए गये। इसके बाद उस गेरुए वस्त्रके दो टुकड़े कर

उसने एक टुकड़ेका लँगोटा बनाकर पहना और दूसरेकी गाँती बनाकर ओढ़ ली, जिससे उसका शरीर ढँक गया। घरमें एक छोटा-सा आईना रखा था। उसे आज बहुत दिनों बाद उसने बाहर निकाला और उसमें अपना रूप देखने लगी। देखते-देखते बोली—"हाय! क्या करनेको थी और मैंने क्या कर डाला?" तब आईनेको अलग फेंककर उसने कटे हुए बालोंकी दाढ़ी-मूछें बनायीं, पर उन्हें लगा न सकी। उसने कहा—"छिः! छिः! क्या कहीं ऐसा भी होता है? अब वह समय कहाँ? पर हाँ, उस बूढ़ेको छकानेके लिए इन्हें रख छोड़ना ठीक है।" यही सोचकर उसने उन नकली दाढ़ी-मूछोंको कपड़ेमें छिपाकर रख लिया। इसके बाद उसने घरके अन्दरसे एक बड़ी-सी मृगछाला निकाल, कण्ठमें बाँध, कण्ठसे जानुपर्यन्त शरीर ढँक लिया। इस प्रकार नूतन सन्यासीका रूप बना लेनेपर उसने एक बार घरके चारों तरफ स्थिर भावसे देखा। दो पहर रात बीतनेपर उसने उसी संन्यासी वेशमें किवाड़ खोल घरसे बाहर निकल उसी जङ्गलमें प्रवेश किया। वनकी देवियोंने उस आधीरातके समय जङ्गल-में अपूर्व सङ्गीत होता हुआ सुना।

गीत

नहीं मनोरथ घर रहनेका,
कहलाके अबला नारी।
रण-जय गावो सब जुड़ि जाओ,
करो युद्ध की तैयारी॥
कौन तुम्हारा? कहांसे आये?
किसके हो? क्या कहलाओ?
चढ़ घोड़ेपर बाँध अस्त्र मैं,
लड़न चली मत लौटाओ॥

हरि-हरि कह तज मोह प्राणका,
समर करूँगी अति भारी।
नहीं मनोरथ घर रहनेका० ।

कहाँ चला प्रिय प्राण हमारा,
मुझे छोड़के मत जाना।
महानाद से विजय नगाड़ा,
बजता है यह मन माना ॥
घोड़े उसे देख जी उमड़ा,
युद्ध-कामना है भारी।
नहीं मनोरथ घर रहनेका,
कहलाके अबला नारी ॥

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन आनन्दमठके भीतरवाले एक सुनसान मकानमें सन्तानों-के तीनों नायक भग्नोत्साह हो बैठे बातें कर रहे थे। जीवानन्दने सत्यानन्दसे पूछा—"महाराज! देवता हम लोगोंपर ऐसे अप्रसन्न क्यों हैं? किस अपराधसे हमलोग मुसलमानों द्वारा हराये गये?"

सत्यानन्दने कहा—"देवता अप्रसन्न नहीं हैं, लड़ाईमें तो हार-जीत हुआ ही करती है; उस दिन हम जीते थे, आज हार गये हैं; अन्तमें फिर जीत सकते हैं। मुझे पूरा भरोसा है कि जो इतने दिनोंसे हमारी रक्षा करते आये हैं वे ही शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी बनवारी फिर हमपर दया दिखलायेंगे। उनके चरण छूकर हम लोगोंने जिस व्रतको ग्रहण किया है, उसका पालन तो हमें करना ही होगा। विमुख होनेसे हमें अनन्त नरक भोगना होगा। मुझे तो आगे मङ्गल-ही-मङ्गल

दिखाई देता है'। परन्तु जैसे दैवानुग्रह हुए बिना कोई कार्य नहीं सिद्ध होता वैसे ही पुरुषार्थ बिना भी कोई काम नहीं सरता। हमारे हारनेका कारण यही हुआ कि हम निहत्थे थे! गोले-गोलियोंके सामने लाठी, बर्छे और भालेकी क्या हकीकत है? इसलिये यह कहना ही पड़ता है कि हममें पुरुषार्थ नहीं था, इसीसे हम हार गये। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने यहाँ भी हथियारों और बन्दूकोंका ढेर लगा दें।"

जीवा०—"यह काम तो बड़ा ही कठिन है!"

सत्या०—"जीवानन्द! क्या सचमुच बड़ा ही कठिन है? सन्तान होनेपर भी तुम्हारे मुँहसे ऐसी बात क्योंकर निकली? क्या सन्तानोंके लिए भी इस दुनियामें कोई काम बड़ा ही कठिन है?"

जीवा०—"आज्ञा दीजिये, कहांसे अस्त्र संग्रह कर लाऊँ?"

सत्या०—"इसके लिए मैं आज ही रातको तीर्थयात्रा करने निकलूँगा। जबतक मैं न लौटूँ, तबतक तुम लोग किसी बड़े भारी काममें हाथ न डालना। हाँ आपसमें एकता बनाये रखना, सन्तानोंकी प्राण-रक्षाके लिए खाने-पहननेकी चीजें संग्रह करते रहना और माताकी युद्ध-जयके लिये अर्थ-संग्रह करते जाना। यह भार तुम दो जनोंपर रहेगा।"

भवानन्दने कहा—"आप तीर्थयात्राके समय यह सब सामान क्योंकर इकट्ठा कर सकेंगे? गोली-गोले और तोप-बन्दूकें खरीद कर भेजनेसे तो बड़ी गड़बड़ मच जायगी, और इतना सामान मिलेगा कहाँ? कौन इतना सामान बेचनेको तैयार होगा, और कौन ला सकेगा?"

सत्या०—"खरीदकर लानेसे हमारा काम नहीं चलेगा। मैं कारीगर भेज दूँगा, उनसे यहीं बनवा लेना होगा।"

जीवा०—"यहीं क्या? आनन्दमठमें?"

सत्या०—"कहीं ऐसा हो सकता है? मैं बहुत दिनोंसे इसकी

फिक्रमें था, आज भवानन्दकी दयासे मौका हाथ लग गया है। तुम लोग कह रहे थे कि विधाता हमारे प्रतिकूल है, पर मैं तो देख रहा हूँ कि वह एकदम अनुकूल है।"

भवा०—"कारखाना कहाँ खुलेगा ?"

सत्या०—"पदचिह्न ग्राममें।"

भवा०—"वहाँ क्यों खुलेगा ?"

सत्या०—"इसीलिये तो मैंने महेन्द्रसे यह व्रत ग्रहण करवाना चाहा था और उसके लिये इतना तरद्दुद उठाया है ?"

जीवा०—"क्या महेन्द्रने व्रत ले लिया ?"

सत्या०—"लिया नहीं है, लेगा। आज ही रातको उसकी दीक्षा होगी।"

जीवा०—"महेन्द्रके लिये क्या-क्या तरद्दुद उठाने पड़े, वह तो हमको मालूम हो नहीं। उसकी स्त्री-कन्या क्या हुई। वे कहाँ रखी गयी हैं ? मैंने आज नदीके तीरपर एक कन्या पड़ी पायी थी उसे अपनी बहनको दे आया हूँ। उसके पास एक सुन्दरी स्त्री भी मरी पड़ी थी। कहीं वही तो महेन्द्रकी स्त्री नहीं थी ? मुझे तो ऐसा ही शक हो रहा था।"

सत्या०—"हाँ, वेही महेन्द्रकी स्त्री-कन्या थीं।"

भवानन्द चौंक उठे। अब वे समझ गये कि मैंने जिस स्त्रीको औषधिके बलसे पुनर्जीवित किया है, वह महेन्द्रकी ही स्त्री कल्याणी है; किन्तु इस समय उन्होंने कोई बात कहनी आवश्यक नहीं समझी।

जीवानन्दने कहा—"महेन्द्रकी स्त्री कैसे मरी ?"

सत्या०—"जहर खाकर।"

जीवा०—"उसने जहर क्यों खाया ?"

सत्या०—"भगवान्ने उसे प्राण त्याग करनेके लिए सपनेमें आज्ञा दी थी।"

जीवा०—"वह स्वप्नादेश क्या सन्तानोंके कार्योद्धारके ही निमित्त हुआ था ?"

सत्या०—"महेन्द्रसे तो मैंने ऐसा ही कुछ सुना था। अच्छा, अब सायंकाल हो चला है। मैं सन्ध्या-पूजा करने जाता हूँ। उसके बाद नूतन सन्तानोंको दीक्षित किया जायगा।"

भवा०—"क्या बहुतसे नये सन्तान दीक्षा लेनेवाले हैं ? क्या महेन्द्रके सिवा और कोई आदमी शिष्य होना चाहता है।"

सत्या०—"हाँ, एक और नया आदमी है। पहले तो मैंने उसे कभी नहीं देखा था। आज ही वह मेरे पास आया है। वह बड़ा ही नवजवान और सुन्दर पुरुष है। मैं उसकी चाल-ढाल और बात-चीतसे बड़ा ही प्रसन्न हुआ था। वह एकदम खरा सोना मालूम पड़ता है। उसे सन्तानोंका कर्त्तव्य सिखलानेका भार जीवानन्दको दिया जाता है। इसका कारण यह है कि जीवानन्द लोगोंका मन मोह लेनेमें बड़ा चतुर है। मैं चलता हूँ तुम लोगोंसे सिर्फ एक बात और कहनेको रह गयी है। दत्तचित होकर उसे भी सुन लो।"

दोनोंने हाथ जोड़े हुए कहा—"जो आज्ञा।"

सत्यानन्दने कहा—"यदि तुम दोनोंमें किसीसे कोई अपराध बन आया हो अथवा मेरे लौट आनेके पहले कोई नया अपराध बन पड़े तो उसके लिए मेरे आये बिना प्रायश्चित्त न करना। मेरे आनेपर ही प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।"

यह कह सत्यानन्द अपने स्थानको चले गये। भवानन्द और जीवानन्द परस्पर एक दूसरेका मुँह देखने लगे।

भवा०—"यह बात कहीं तुम्हारे ही ऊपर तो नहीं कही गयी है।"

जीवा०—"हो सकता है, क्योंकि मैं महेन्द्रकी कन्याको रख आनेके लिए बहनके घर चला गया था।"

भवा०—"इसमें भला कौनसा अपराध हुआ ? वह तो कोई निषिद्ध कार्य नहीं है, कहीं अपनी स्त्रीसे भी तो नहीं मिल आये हो ?"

जीवा०—"शायद गुरुजीको यही सन्देह हुआ है।"

चौथा परिच्छेद

सन्ध्या-पूजा समाप्तकर सत्यानन्दने महेन्द्रको बुलाकर कहा—"तुम्हारी स्त्री और कन्या जीवित हैं।"

महेन्द्र—"कहाँ हैं महाराज ?"

सत्या०—"तुम मुझे महाराज क्यों कहते हो ?"

महेन्द्र—"सभी कहते हैं, इसीलिए मैं भी कहता हूँ। मठके अधिकारी राजा कहलाते हैं। महाराज, मेरी कन्या कहाँ है ?"

सत्या०—"इसका जवाब पानेके पहले एक बातका ठीक-ठीक जवाब दो। क्या तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करना चाहते हो ?"

महेन्द्र—"हाँ, पक्का इरादा कर चुका हूँ।"

सत्या०—"तब यह न पूछो कि तुम्हारी स्त्री-कन्या कहाँ हैं ?"

महेंद्र—"क्यों महाराज ?"

सत्या०—"जो मनुष्य यह व्रत ग्रहण करता है, उसे स्त्री, पुत्र, कन्या और सगे-सम्बन्धियोंसे नाता तोड़ देना पड़ता है। स्त्री, पुत्र, कन्या आदिका मुँह देखना पाप है। उसके लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जबतक सन्तानोंका मनोरथ सिद्ध नहीं होता, तबतक तुम अपनी कन्याका मुँह न देखने पाओगे। इसलिए यदि तुमने सन्तान-धर्म ग्रहण करनेका पक्का इरादा कर लिया हो, तो फिर कन्याका हाल न पूछो। पूछकर ही क्या करोगे ? तुम उसे देखने तो पाओगे ही नहीं।"

महेन्द्र—"ऐसा कठिन नियम क्यों प्रभो ?"

सत्या०—"संतानोंका काम बड़ा ही कठिन है। जो सर्व-त्यागी है उसके सिवा दूसरेसे वह काम नहीं हो सकता। जिसका चित्त मायाके जालमें फँसा है, वह डोरी बँधे हुए पतंगकी तरह पृथ्वी छोड़कर स्वर्ग नहीं जा सकता।"

महेन्द्र—"महाराज! आपकी बात अच्छी तरह मेरी समझमें नहीं आती। जो स्त्री-पुत्रका मुख देखता है वह क्या किसी गुरुतर कार्य-का अधिकारी नहीं हो सकता ?"

सत्या०—"पुत्र कलत्रको देखते ही हम लोग देवताकी बात भूल जाते हैं। संतान-धर्मका यह नियम है कि जभी प्रयोजन हो, तभी संतानगण प्राण त्याग दें। तुम यदि अपनी कन्याका मुंह देख लोगे तो क्या उसे छोड़कर तुमसे प्राण दिये जायँगे ?"

महेन्द्र—"न देखनेपर ही क्या उसे भूल जाऊँगा।"

सत्या०—"अगर न भूल सकोगे तो यह व्रत ग्रहण मत करो।"

महेन्द्र—"क्या सभी संतानोंने इसी तरह स्त्री-पुरुषकी मोह-माया त्यागकर यह व्रत ग्रहण किया है ? तब तो संतानोंकी संख्या बहुत कम होगी ?"

सत्या०—"संतान दो तरहके हैं एक दीक्षित दूसरे अदीक्षित। जो दीक्षित नहीं हैं वे संन्यासी या भिखारी हैं। वे केवल युद्धके समय चले आते हैं और लूटके मालमें हिस्सा-इनाम पाकर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं वे सब कुछ छोड़ बैठे हैं। वे ही इस सम्प्रदायके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। मैं तुम्हें अदीक्षित-संतान नहीं बनाना चाहता, क्योंकि लड़ने-भिड़नेके लिये भाले-बर्छी और लाठी-सोटेवाले तो बहुतसे हैं। दीक्षित हुए बिना तुम सम्प्रदायका कोई गुरुतर कार्य नहीं कर सकोगे।"

महेन्द्र—"दीक्षा कैसी ? मैं दीक्षा क्यों लूँ ? मैं तो पहले ही मन्त्र ले चुका हूँ।"

सत्या०—"मन्त्र छोड़कर मुझसे फिर दूसरा मन्त्र लेना होगा।"

महेन्द्र—"वह मंत्र कैसे त्याग कर सकता हूँ ?"

सत्या०—"उसकी विधि मैं तुमको बतला दूँगा।"

महेन्द्र—"नया मन्त्र क्यों लेना पड़ेगा ?"

सत्या०—"सन्तान लोग वैष्णव हैं।"

महेन्द्र—"यह तो मेरी समझमें नहीं आता। ये सन्तान लोग कैसे वैष्णव हैं ? वैष्णवोंके लिये तो अहिंसा ही बड़ा भारी धर्म है।

सत्या०—"अहिंसावाले चैतन्य देवके अनुयायी वैष्णव हैं। नास्तिक बौद्धधर्मके अनुकरण पर जो अप्राकृतिक वैष्णवधर्म उत्पन्न हुआ था, यह उसीका लक्षण है; परन्तु सच्चे वैष्णवधर्मका लक्षण दुष्टोंका दमन और धरित्रीका उद्धार है; क्योंकि विष्णु ही संसारके पालनकर्त्ता हैं। उन्होंने दस बार शरीर धारण कर पृथ्वीका उद्धार किया है। केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, मुर, नरक आदि दैत्यों, रावणादि राक्षसों और कंस तथा शिशुपाल आदि राजाओंको उन्होंने ही युद्धमें मार गिराया था। ये ही जेता, जयदाता, पृथ्वीके उद्धारकर्त्ता और सन्तानोंके इष्ट देवता हैं। चैतन्यदेवका वैष्णव धर्म तो अधूरा है। वह सच्चा वैष्णवधर्म नहीं है। चैतन्यदेवके विष्णु प्रेममय हैं, किन्तु भगवान केवल प्रेममय ही नहीं, अनन्त शक्तिमय भी हैं। चैतन्यके विष्णु केवल प्रेममय हैं। सन्तानोंके विष्णु केवल शक्तिमय हैं। हम दोनों ही वैष्णव हैं, पर आधे ही वैष्णव हैं। अब बात समझमें आई कि नहीं ?"

महेन्द्र—"नहीं, यह तो बिल्कुल नयी बातें मालूम पड़ती हैं। कासिम बाजारमें एक बार एक पादरी मिला था। वह भी कुछ ऐसी ही बातें करता था। कहता था कि ईश्वर प्रेममय है। तुम लोग ईसा-मसीहको प्यार करो। आपकी बातें भी उसीकीसी मालूम पड़ती हैं।"

सत्या०—"जैसी बातें हमारे बाप-दादे कहते चले आये हैं वैसी ही

बातें तो मैं कह रहा हूँ। तुमने यह सुना है या नहीं कि ईश्वर त्रिगुणात्मक हैं।

महेंद्र—"हाँ सुना है। सत्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं।"

सत्या०—"बहुत ठीक। इन गुणोंकी अलग-अलग उपासना होती है। सत्वगुणकी उपासना भक्तिद्वारा करनी चाहिये। चैतन्यका सम्प्रदाय यही करता है। रजोगुणसे उनकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसकी उपासना युद्ध द्वारा की जाती है। देवताके शत्रुओंको मारकर की जाती है। हम लोग ऐसा ही करते हैं। और तमोगुणसे भगवानने शरीर धारणकर, चतुर्भुज आदि रूप इच्छानुसार धारण किये हैं। माला, चन्दन आदि उपहारोंके द्वारा इस गुणकी पूजा की जाती है। सर्व-साधारण ऐसा ही करते हैं। अब समझे या नहीं?"

महेन्द्र—"समझा। तब तो संतानगण भी एक प्रकारके उपासक ही हैं।"

सत्या०—"अवश्य। हम लोग राज्य नहीं चाहते, पर चूंकि ये मुसलमान भगवान्से द्वेष करते हैं, इसलिये हम उनको निर्मूल कर डालना चाहते हैं।"

पांचवाँ परिच्छेद

बातचीत समाप्त कर, सत्यानन्द महेन्द्रको लेकर मठके भीतरवाले मन्दिरमें, जहाँ वह शोभामयी प्रकाण्ड चतुर्भुज मूर्ति विराजती थी, प्रवेश किया। उस समय वहाँकी शोभा बड़ी ही विचित्र थी। सोने, चाँदी और रत्नोंसे जगमगाते हुए प्रदीप मन्दिरको आलोकित कर रहे थे। ढेरके ढेर फल शोभायमान होते हुए मन्दिरमें सुगन्ध फैला रहे थे। एक आदमी वहाँ बैठा हुआ धीरे-धीरे "हरे मुरारे" कह रहा था।

सत्यानन्दके भीतर घुसते ही उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मचारी-ने पूछा—"तुम दीक्षित होना चाहते हो?"

उसने कहा—"मेरे ऊपर दया कीजिये।"

यह सुन, उसे और महेन्द्रको सम्बोधन कर सत्यानन्दने कहा—"तुम लोगोंने यथाविधि स्नान कर लिया है न? अच्छी तरसे संयम और उपवास किये हुए हो न?"

उत्तर—"हाँ।"

सत्या०—"अच्छा, तुम लोग यहीं भगवान्के सामने प्रतिज्ञा करो कि हम संतान धर्मके सब नियमोंका पालन करेंगे!"

दोनों—"करेंगे।"

सत्या०—"जबतक माताका उद्धार नहीं हो जाता, तबतक गृहस्थ-धर्मका परित्याग करोगे न?"

दोनों—"हाँ करेंगे।"

सत्या०—"माँ-बापको त्याग दोगे?"

दोनों—"हाँ!"

सत्या०—"भाई-बहनको?"

दोनों—"हाँ उन्हें भी छोड़ देंगे।"

सत्या०—"स्त्री-पुत्रको?"

दोनों—"उन्हें भी त्याग देंगे।"

सत्या०—"सगे-सम्बन्धियों और दास-दासियोंको?"

दोनों—"उन्हें भी छोड़ देंगे।"

सत्या०—"धन-सम्पदा, भोग-विलास?"

दोनों—"आज हीसे इन सबको छोड़ देंगे?"

सत्या०—"इन्द्रियोंको वशमें रखोगे न? कभी किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठोगे?"

दोनों—"नहीं बैठेंगे। इन्द्रियोंको वशमें रखेंगे।"

सत्या०—"भगवान्‌के सामने प्रतिज्ञा करो, कि अपने लिये या अपने सगे सम्बन्धियोंके लिये अर्थोपार्जन न करोगे। जो कुछ पैदा करोगे, उसे वैष्णवोंके धनागारमें दोगे।"

दोनों—"हाँ ऐसा ही करेंगे।"

सत्या०—"सन्तानधर्मके लिये स्वयं अस्त्र हाथमें लेकर युद्ध करोगे न?"

दोनों—"हां।"

सत्या०—"रणसे कभी पीछे तो न हटोगे?"

दोनों—"कभी नहीं।"

सत्या०—"यदि तुम्हारी यह प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाय?"

दोनों—"तो एक जलती चितामें प्रवेश कर या विष खाकर प्राण त्याग कर देंगे।"

दूसरे ने कहा—"मैं तो ब्राह्मणका बालक हूँ।"

सत्या०—"अच्छी बात है। क्या तुम अपनी जाति त्याग सकोगे? सब सन्तानोंकी जाति एक है। इस महाव्रतमें ब्राह्मण शूद्रका कोई विचार नहीं है। बोलो, क्या कहते हो?"

दोनों—"हम सब एक ही माँ की सन्तान हैं। अतएव हमलोग जाति-पाँतिका विचार न करेंगे।"

सत्या०—"तब आओ, मैं तुम लोगोंको दीक्षा दूँ। देखना तुम लोगोंने जो प्रतिज्ञायें अभी की हैं, उन्हें कभी न तोड़ना। स्वयं मुरारी इसके साक्षी रहेंगे; जिन्होंने रावण, कंस हिरण्यकशिपु, जरासन्ध, शिशुपाल आदिको मार डाला था, जो सर्वान्तर्यामी, सर्वमय, सर्वशक्तिमान और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्रके वज्र और बिल्लीके नखोंमें तुल्यरूपसे वास करते हैं, वही प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवालोंको मारकर घोर नरकमें डाल देंगे।"

दोनों—"बहुत अच्छा।"

सत्या०—"अच्छा तो अब गाओ—"वन्देमातरम्।"

दोनों ही उस अकेले मातृमन्दिरमें मातृ-स्तुतिका गान करने लगे। इसके बाद ब्रह्मचारीने उन लोगोंको यथाविधि दीक्षा दी।

———

छठा परिच्छेद

दीक्षा समाप्तकर सत्यानन्द महेन्द्रको एकान्त स्थानमें ले गये। दोनोंके बैठ जानेपर सत्यानन्दने कहा—"देखो बेटा! तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया है, इससे मैं समझता हूँ कि भगवान् हमलोगोंके प्रति अनुकूल हो रहे हैं। तुम्हारे हाथों मांका बहुत काम निकलेगा। तुम खूब मन लगाकर मेरी बात सुनो। मैं तुमको जीवानन्द और भवानन्दके साथ-साथ वन-वन भटकते हुए युद्ध करनेको नहीं कहता। तुम पदचिह्न ग्राममें लौट जाओ। तुम्हें घरपर रहकर ही सन्तानधर्मका पालन करना होगा!"

यह सुन महेन्द्र बड़े ही विस्मित और दुःखित हुए पर कुछ बोले नहीं। ब्रह्मचारी कहने लगे—"यहाँ हमारा कोई आश्रय नहीं है—ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ यदि कोई प्रबल सेना आकर हमें घेर ले, तो हम रसद-पानी ले, दरवाजा बन्दकर, दस दिन तक निर्विघ्न रह सकें। हमारे पास कोई किला तो है नहीं—तुम्हारी महल अटारी है, गांवपर तुम्हारा रोब-दाब है। मेरी इच्छा है कि वहाँ एक गढ़ बनाऊँ। खाई और शहर-पनाहोंके द्वारा पदचिह्न ग्रामको अच्छी तरह घेरकर बीच-बीचमें पहरेका इन्तजाम कर देने और बांधमें ऊपर तोपें बैठा देनेसे बड़ा बढ़िया किला तैयार हो जायगा। तुम अपने घर चले जाओ, धीरे-धीरे सन्तान-सम्प्रदायके दो हजार आदमी भी वहाँ पहुंच जायंगे। वे लोग यह खाई और बांध वगैरह तैयार कर देंगे। तुम

वहाँ एक बड़ा-सा लोहेका मकान बनवा लेना, जिसमें सन्तानोंका खजाना रहेगा। मैं अशर्फियोंसे भरे हुए सन्दूक एक एककर तुम्हारे पास भेजता रहूंगा। तुम उसी धनसे धीरे-धीरे सब काम पूरा करा लेना। मैं जगह-जगहसे होशियार कारीगर ढूंढ़कर वहां भेजूंगा। उनके पहुँच जानेपर तुम वहाँ कारखाना खोल देना जिसमें तोप, गोला, गोली, बारूद और बन्दूकें तैयार हुआ करेंगी। मैं इसीलिये तुम्हें घर जानेको कह रहा हूँ।

महेन्द्रने सब स्वीकार कर लिया।

—०:*:०—

सातवां परिच्छेद

सत्यानन्दके चरणोंमें प्रणामकर महेंद्र जब चले गये, तब वह दूसरा शिष्य जो उसी दिन दीक्षित हुआ था वहां आ पहुंचा। उसके प्रणाम करनेपर सत्यानन्दने उसे आशीर्वाद देकर मृग चर्मपर बैठनेके लिये कहा। इधर-उधरकी कुछ बातें करनेके अनन्तर उन्होंने कहा—"कृष्णमें तुम्हारी गहरी भक्ति है या नहीं?"

शिष्यने कहा—"सो कैसे कहूं? मैं जिसे भक्ति समझता हूं, वह या तो दुनियाकी आखोंमें धूल झोंकना है या अपनी आत्माके साथ धोखा करना है।"

सत्यानन्दने संतुष्ट होकर कहा—"ठीक कहते हो, जिससे भक्ति दिन-दिन गहरी हो, वही काम करना। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा प्रयास सफल होगा; क्योंकि तुम्हारी उमर अभी बहुत थोड़ी है। अच्छा, बेटा तुम्हें क्या कहकर पुकारा करूं? मैं तो यह बात पूछना ही भूल गया था।"

नूतन सन्तानने कहा—"आपकी जो इच्छा हो वही कहकर पुकारें। मैं तो वैष्णवोंका दासानुदास हूँ।"

सत्यानन्द—"तुम्हारी यह नवीन अवस्था देखकर तो तुम्हें नवीनानन्द ही कहकर पुकारनेकी इच्छा होती है। बस, आजसे तुम्हारा यही नाम हुआ, पर एक बात तो बतलाओ—तुम्हारा पहला नाम क्या था? यदि कहनेमें कोई बाधा हो तो भी कह देना। मुझसे कह दोगे तो निश्चय जान रखो, कि कोई तीसरा यह न जानने पायेगा। सन्तानधर्मका मर्म यही है कि जो न कहने योग्य हो, वह बात भी गुरुसे कह देनी चाहिये। कह देनेसे कोई क्षति नहीं होती।"

शिष्य—"मेरा नाम तो शान्तिरामदेव शर्मा है।"

"नहीं, तेरा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।" यह कहकर सत्यानन्दने अपने शिष्यकी काली और डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी बायें हाथसे पकड़कर खींची। बस, नकली दाढ़ी झटसे अलग हो गयी। सत्यानन्दने कहा—"जा बेटी! तू मेरे साथ धोखाधड़ी करने आयी थी? यदि छकाने ही चली थी; तो फिर तूने यह डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी क्यों लगायी। दाढ़ी अगर ठीक बैठ भी जाती, तो यह कोमल कण्ठस्वर और यह चितवन कैसे छिपा लेती? यदि मैं ऐसा बोदा होता, तो फिर इतने बड़े काममें हाथ क्योंकर लगाता?"

लजायी हुई शान्ति दोनों हाथोंसे आंखें छिपाये और सिर झुकाये हुए कुछ देरतक बैठी रही। इसके बाद हाथ हटाकर उसने बूढ़े बाबापर एक तिरछी चितवनका वार कर कहा—"प्रभो! मैंने कुछ अपराध तो नहीं किया। क्या स्त्रियोंके हाथमें बल नहीं होता?"

सत्या०—"उतना ही, जितना गायके खुरमें जल समा सकता है।"

शान्ति—"आप क्या कभी सन्तानोंके बाहुबलकी परीक्षा भी लेते हैं?"

सत्या०—"हां लेता हूँ।" यह कहकर सत्यानन्दने एक फौलादका धनुष और कुछ थोड़े से लोहेका तार लाकर शान्तिके हाथमें देते हुए

कहा—"इस फौलादके धनुषपर इस तारकी प्रत्यञ्चा चढ़ानी होती है। प्रत्यञ्चा दो हाथकी होती है। प्रत्यञ्चा चढ़ाते चढ़ाते धनुष उछल पड़ता है, जिससे प्रत्यञ्चा चढ़ानेवाला ही दूर जा गिरता है। इसपर जो सही सलामत प्रत्यञ्चा चढ़ा दे, उसे ही मैं बलवान् समझता हूँ।"

शान्तिने उस धनुष और तारकी भलीभांति परीक्षा कर कहा—"क्या सभी सन्तान इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं?"

सत्या०—"नहीं, मैंने इसके द्वारा उनके बलका अनुमानमात्र कर लिया है।"

शान्ति—"कौन-कौन इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं?"

सत्या०—"सिर्फ चार आदमी।"

शान्ति—"कौन-कौन? क्या मैं यह पूछ सकती हूँ?"

सत्या०—"हाँ, कोई आपत्ति नहीं है? एक तो मैं ही इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुका हूँ।"

शान्ति—"और कौन कौन उत्तीर्ण हुए हैं?"

सत्या०—"जीवानन्द, भवानन्द और ज्ञानानन्द।"

यह सुन शान्तिने धनुष और तीर लेकर झटपट धनुषका गौंदा कस दिया और ब्रह्मचारीके चरणोंके पास रख दिया।

सत्यानन्द विस्मित, भीत और स्तम्भित हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—"यह क्या? तुम देवी हो या मानवी?"

शान्तिने हाथ जोड़कर कहा—"मैं सामान्य मानवी हूँ, पर हाँ ब्रह्मचारिणी हूँ।"

सत्या०—"सो कैसे? तुम बाल विधवा हो? नहीं बालविधवाओंमें भी इतना बल नहीं होता; क्योंकि वह एक ही समय भोजन करती हैं।"

शान्ति—"मैं सधवा हूँ।"

सत्या०—"तो क्या तुम्हारा स्वामी लापता है?"

शान्ति—"नहीं उनका पता-ठिकाना है और उन्हींका पता पाकर यहाँ आयी हूँ।"

सहसा सत्यानन्दके चित्तमें एक बात वैसे ही झलक आयी जैसे मेघमालाको हटाकर एकाएक धूप निकल आये। उन्होंने कहा—"अच्छा मुझे याद आ गया। जीवानन्दकी स्त्रीका नाम शांति था। कहीं तुम जीवानन्दकी स्त्री तो नहीं हो?"

नवीनानन्दने अपने मुँहको जटासे ढक लिया, मानों कमलके फूलोंपर हाथीका सूँड़ फैल गया। सत्यानन्द बोले—"तू यह पाप करने क्यों आयी?"

यकायक अपनी जटाको पीठपर फेंक, शांतिने मुँह उठाकर कहा—"प्रभो! पाप कैसा? पत्नीको स्वामीका अनुकरण करना क्या पाप कहलाता है? यदि सन्तानोंका धर्मशास्त्र इसे पाप बतलाता हो, तो सन्तान धर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूँ। वे धर्माचरणमें लगे हैं, इसलिए मैं उनके धर्ममें सहायता करने आयी हूँ।"

शान्तिकी तेजभरी वाणी सुन, और उसकी बाँकी गरदन, उठी हुई छाती, काँपते हुए अधर और उज्ज्वल तथा नीरपूर्ण नेत्र देख सत्यानन्द बड़े ही प्रसन्न हुए, बोले—"तुम साध्वी हो इसमें सन्देह नहीं, किन्तु बेटी, पत्नी केवल गृह-धर्ममें ही सहधर्मिणी मानी जाती है। वीर धर्ममें रमणीकी सहायता कैसी?"

शान्ति—"कौनसे महावीर बिना पत्नीके ही वीर हो गये। यदि सीता न होती तो राम थोड़े ही वीर हो सकते थे? बतलाइये तो सही, अर्जुनने कितने विवाह किये थे? भीममें जितना बल था, उनके उतनी ही पत्नियाँ भी थीं। कहाँतक कहूँ? आपको बतलानेकी जरूरत नहीं है।"

सत्या०—"ठीक है पर कौन वीर अपनी स्त्रीको लेकर रणभूमिमें गया है?"

शान्ति—"अर्जुन जिस समय यादवी सेनाके साथ आकाशमार्गसे युद्ध कर रहे थे, उस समय किसने उनका रथ चलाया था ? द्रौपदी यदि साथ न रहती, तो पांडवगण कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें जूझने थोड़े ही जाते ?"

सत्या०—"ठीक है पर साधारण लोगोंके मन स्त्रियोंको देख कर चंचल हो जाते हैं, जिससे वे काममें ढिलाई करने लगते हैं इसलिये सन्तानोंसे यह प्रतिज्ञा करायी जाती है कि वे किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठें। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। तुम क्या मेरा दाहिना हाथ ही तोड़ने चली हो ?"

शांति—"नहीं, मैं आपके दाहिने हाथका बल बढ़ाने आयी हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूं और प्रभुके पास ब्रह्मचारिणी बनकर रहूँगी, मैं केवल धर्माचरण करने आयी हूँ—स्वामीके दर्शन करनेके लिये नहीं। मैं विरहकी ज्वालासे जल नहीं रही हूँ। स्वामीने जो धर्म स्वीकार किया है, उसमें मेरा हिस्सा क्यों न होगा, यही सोचकर मैं चली आयी हूँ।"

सत्या०—"अच्छी बात है, मैं कुछ दिनोंतक परीक्षा लूँगा।"

शांतिने पूछा—"मैं आनन्दमठमें रहने पाऊँगी न ?"

सत्या०—"तो आज फिर कहाँ जाओगी ?"

शांति—"इसके बाद ?"

सत्या०—"माता भवानीकी तरह तुम्हारे ललाटमें भी अग्नि है। सन्तान-सम्प्रदायको ही भस्म करोगी ?"

यह कह, आशीर्वाद दे, सत्यानन्दने शान्तिको विदा किया। शान्तिने आप-ही-आप कहा—"अच्छा बुड्ढे ! रह जा, मेरे ललाटमें आग लगी है न ? अच्छा, तो मैं देखूँगी, तेरी माँके कपालमें आग लगी है या मेरे ?"

सच पूछो तो सत्यानन्दका यह अभिप्राय नहीं था।—उन्होंने उसकी आँखोंमें जो बिजली थी, उसीकी बात कही थी, पर क्या ऐसी बात किसी बूढ़े-बड़ेको नौजवानोंसे कहनी चाहिये।

———

आठवां परिच्छेद

—:०※०:—

शांतिको उस दिन रातभरके लिये मठमें रहनेकी आज्ञा मिली थी, इसलिये वह रहने के लिये घर ढूँढने लगी। अनेक घर खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नामका नौकर—वह भी एक छोटा-मोटा सन्तान ही था—हाथमें चिराग लिये उसे घर दिखाता था। कोई घर शांतिको पसन्द नहीं आया। हताश होकर गोवर्द्धन शान्तिको सत्यानन्दके पास ले चला। शांतिने कहा—"क्यों भाई! इधरके कई घर तो तुमने दिखलाये ही नहीं?"

गोवर्द्धनने कहा—"वे सब घर अच्छे हैं, इसमें सन्देह नहीं; पर सबमें आदमी भरे हैं।"

शान्ति—"कैसे-कैसे लोग हैं?"

गोव०—"बड़े-बड़े सेनापतिगण!"

शान्ति—"बड़े-बड़े सेनापति कौन-कौन हैं?"

गोव०—"भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द। इस आनन्दमठमें सब आनन्द ही आनन्द हैं।"

शान्ति—"चलो, मैं जरा उन घरोंको देख लूँ।"

यह सुन गोवर्द्धन पहले तो शान्तिको धीरानन्दके घरमें ले गया। उस समय धीरानन्द महाभारतका द्रोणपर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्युने किस प्रकार सप्तरथियोंके साथ युद्ध किया था यही पढ़नेमें वे डूबे हुए

थे। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। शान्ति भी चुपचाप वहाँसे लौट आयी।

इसके बाद वह भवानन्दके घर गयी। उस समय वे ऊपरको दृष्टि किये किसीका मुखड़ा याद कर रहे थे। किसका मुखड़ा, सो तो नहीं मालूम, पर वह मुखड़ा बड़ा ही सुन्दर था। उसके काले-काले घुँघराले और सुगन्धयुक्त केश कानोंतक फैली हुई भौंहोंपर आ पड़े थे। बीचमें विराजित सुन्दर और त्रिकोण ललाटपर मृत्युकी भयंकर छाया पड़ रही थी। मानों वहाँ मृत्यु और मृत्युञ्जयका आपसमें द्वन्द्व युद्ध हो रहा था। आंखें बन्द, भौंहें स्थिर, होंठ नीले, गाल पीले, नाक ठंढी, छाती फूली हुई और हवासे कपड़े उड़ रहे थे। इसके बाद जैसे शरतकालका मेघनिर्मुक्त चन्द्रमा धीरे-धीरे मेघमालाको उज्ज्वल बनाता हुआ अपना सौंदर्य विकसित करता है, जैसे प्रभातसूर्य तरङ्गोंके आकारवाले मेघोंको क्रमसे सुनहला बनाता हुआ आप ही जगमगा उठता है, दशों दिशाओंको आलोकित करता हुआ स्थल, जल, कीट, पतंग सबको प्रफुल्लित करता है। उसी तरहसे धीरे-धीरे उस अमृत देहमें मानों प्राण-सञ्चार हो रहा था। अहा! कैसी शोभा है! भवानन्द बैठे-बैठे यही सोच रहे थे। इसलिये वे भी कुछ न बोले। कल्याणीका रूप देखकर उनका हृदय कातर हो गया था, इसीलिये शांतिके रूपपर उनकी दृष्टि न पड़ी।

शान्ति एक दूसरे कमरेमें चली गयी। वहाँ पहुँचकर उसने पूछा—"यह घर किसका है?"

गोवर्द्धनने कहा—"जीवानन्द महाराजका।"

शांति—'ये कौन हैं भाई? यहाँ तो कोई नजर ही नहीं आता।'

गोवर्द्धन—'मालूम होता है कि वे कहीं गये हैं। अभी आते होंगे।"

शांति—"यह घर तो सबोंसे अच्छा है।"

गोवर्द्धन—"पर इस घरमें तो आपको जगह नहीं मिल सकती।'

शान्ति—"क्यों ?"

गोवर्द्धन—"क्योंकि यहाँ जीवानन्द महाराज रहते हैं।"

शान्ति—"वे किसी और घरमें जा रहेंगे।"

गोवर्द्धन—"भला ऐसा भी कभी हो सकता है? जो इस घरमें रहते हैं, वे ही एक तरहसे सबके मालिक हैं। वे जो कुछ कहते हैं वही होता है।"

शान्ति—अच्छा, तुम जाओ, मुझे यहाँ जगह न मिलेगी, तो पेड़की छाया तो है ?"

यह कह, गोवर्द्धनको वहाँसे हटाकर शांति उस घरके अन्दर चली गयी। भीतर आ जीवानन्दके काले हरिणके चमड़े पर आसन जमाकर बैठ गयी और दीपकको जरा तेजकर जीवानन्दकी एक पुस्तक हाथमें लेकर पढ़ने लगी।

कुछ ही देरमें वहाँ जीवानन्द आ पहुँचे। शान्तिको मर्दानी पोशाकमें देखकर भी वे झट उसे पहचान गये और बोले—"यह क्या ? ऐ! शान्ति ?"

शान्तिने धीरे-धीरे उस पुस्तकको नीचे रख दिया और जीवानन्दकी ओर देखते हुए कहा—"शांति किसका नाम है जी ?"

जीवानन्दको तो काठ-सा मार गया—उनकी बोली बन्द हो गयी। अपनेको बहुत कुछ सम्हालकर वे बोले—"क्या तुम शान्ति नहीं हो ?'

शान्तिने घृणाके साथ कहा—"नहीं, मेरा नाम नवीनानन्द गोस्वामी है।" यह कह, वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानन्द बड़े जोरसे हँस पड़े, बोले—"यह तो गिलहरी एकदम नया रङ्ग लायी है। अच्छा, तो कहो नवीनानन्दजी! तुम्हारा यहाँ किसलिये आना हुआ ?"

शान्तिने कहा—"भले आदमियोंके बातचीत करनेका यह नियम है कि पहले-पहलकी देखादेखीमें बातचीत करते समय आप या जनाब

कहकर पुकारते हैं। आप देख रहे होंगे कि मैं स्वयं भी आपके प्रति कोई अनादर-सूचक शब्द मुँहसे नहीं निकालता। फिर आप क्यों मुझे तुम-तुम कह रहे हैं?"

"जो आज्ञा सरकारकी" कहकर जीवानंदने गलेमें चादर लपेट दोनों हाथ जोड़कर कहा—"अब यह दास आपसे विनयके साथ यह निवेदन करता है, कि आप कृपाकर इसे यह बतला दें, कि आपका भरुईपुरसे शुभागमन किस निमित्त हुआ।

शांतिने बड़ी गम्भीरतासे कहा—"अब आपने यह व्यर्थकी तानेजनी शुरू की। इसकी तो कोई जरूरत नहीं थी। मुझे भरुईपुरका नामतक नहीं मालूम। मैंने आज यहाँ आकर संतानधर्मकी दीक्षा ग्रहण की है।"

जीवा०—"ऐं, यह तो सब चौपट हुआ देखता हूँ। क्या यह सच है?"

शांति—"चौपट क्यों? आपने भी तो दीक्षा ली है?"

जीवा०—"तुम स्त्री जो ठहरी।"

शांति—"यह क्या? यह बात आपको कैसे मालूम हुई?"

जीवा०—"मेरा विश्वास था, कि मेरी ब्राह्मणी स्त्रीजातिकी है?"

शान्ति—"ब्राह्मणी! तो क्या आपके ब्राह्मणी भी है?"

जीवा०—"थी तो सही।"

शान्ति—"इसीसे आपको सन्देह हो रहा था कि मैं ही आपकी ब्राह्मणी हूँ?"

जीवानन्दने हाथ जोड़ और गलेमें चादर लपेट विनयपूर्वक कहा—"हाँ सरकार!"

शान्ति—"यदि आपके मनमें इस प्रकार हँसीकी बातें पैदा हुआ करती हैं, तो कहिये, आपका कर्त्तव्य क्या है?"

जीवा०—"आपके कपड़े जबर्दस्ती हटाकर आपकी शंकाका नाश करना ही। और क्या?"

शान्ति—"यह आपकी दुष्ट-बुद्धि अथवा अधिक गाँजा पीनेका परिचय है। आपने दीक्षाके समय शपथकी थी, कि स्त्रियोंके साथ कभी एक आसनपर नहीं बैठेंगे। यदि आपको यह विश्वास है कि मैं स्त्री हूँ—इस तरह रस्सीमें साँपका भय बहुतोंको हुआ करता है—तो आपके लिये उचित यही है कि अलग आसनपर बैठिये। आपको मेरे साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये!"

यह कह, शान्तिने फिर पुस्तकमें मन लगाया। परास्त होकर जीवानन्दने अलग शय्या बिछायी और उसीपर शयन किया।

———

आनन्दमठ

तीसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

—:०❀०:—

ईश्वरकी कृपासे ११७६ का साल समाप्त हो गया। बंगालकी पूरी जनसंख्याके छः आने मनुष्यों को (जो न जाने कितने करोड़ रहे होंगे) यमपुर भेजकर वह दुष्ट संवत्सर आप ही कालके गालमें चला गया। सन् ११७७ सालमें ईश्वरने दया की, पानी अच्छा बरसा, पृथ्वीने खूब अन्न उपजाये। जो लोग जीते बचे थे, उन्होंने पेटभर खानेको पाया। बहुतेरे लोग अनाहार या अल्पाहारके कारण रोगी हो गये थे। वे भरपेट ठूँस-ठूसकर खानेसे ही मर गये। पृथ्वी तो शस्यशालिनी हुई, पर गांवके गाँव खाली नजर आते थे। सुनसान घरोंमें केवल चूहे दंड पेलते नजर आते या भूत-प्रेत फिरा करते थे। गाँव-गाँवमें सैकड़ों बीघे जमीन बिना जोते-बोये ऊसर ही पड़ी रही, जिसमें जंगल सा बन गया। देशभरमें जंगलोंकी भरमार हो गयी। जहाँ लहराते हुए हरे-भरे धानके खेत दिखाई देते थे, जहाँ असंख्य गायें-भैंसे चरती नजर आती थीं, जो बाग-बगीचे गाँवके युवक और युवतियोंकी प्रमोद भूमि थी, वे सब स्थान क्रमशः घोर जंगल होने लगे। एक वर्ष दो वर्ष करते-करते तीन वर्ष बीत गये। जङ्गलोंकी संख्या बढ़ती ही चली गयी। जो स्थान मनुष्यके सुखका स्थान था, वहाँ नर माँस-भोजी बाघ आकर हरिण आदि जानवरोंका शिकार करने लगे। जहाँ सुन्दरियोंकी टोली महावरसे रंगे हुए पैरोंकी पैजनियाँ बजातीं, हमजोलियोंके साथ हंसी-ठठोली करतीं, इतरातीं और बतराती जाती थीं, वहां रीछोंकी मांद और अड्डे बन गये। जहाँ छोटे-छोटे बच्चे बालकालमें संध्या समय खिले हुए चमेलीके फूलकी तरह प्रफुल्लित होकर हृदयको तृप्त करनेवाली किलकारियाँ सुनाया करते थे, वहीं अब झुण्डके झुण्ड मतवाले जङ्गली हाथी

वृक्षोंकी डालें तोड़ते नजर आने लगे। जहाँ कभी दुर्गाजीकी पूजा हुआ करती, वहाँ स्यारोंकी माँद हो गयी, जहाँ सावनमें ठाकुरजीका झूला होता था वहाँ आज उल्लुओंने अपना अड्डा जमा लिया। नाट्य-भवनमें दिनदहाड़े काले नाग मेढक खोजने लगे। बंगालमें आज अन्न उपजा है तो खानेवाले नदारद हैं। बिकनेवाली चीजें पैदा हुई हैं, पर कोई खरीददार नहीं है। किसानोंने खेती की पर रुपया नहीं पाया। इसलिये वे जमींदारोंको मालगुजारी न दे सके। राजाने जमींदारोंसे मालगुजारी न पाकर उनकी जमींदारियाँ जब्त करनी शुरू कीं, इसलिये धीरे-धीरे जमींदार दरिद्र होने लगे। वसुमतीने खूब अन्न उपजाये, पर किसीको धन नहीं मिला—सबका घर धनसे छूँछा ही नजर आने लगा। लूट-खसोटके दिन आये, चोर-डाकुओंने सिर उठाये, सज्जन लोग डरके मारे घरोंमें छिप रहे।

इधर सन्तान-सम्प्रदायवाले नित्य चन्दन और तुलसीदलसे विष्णुभगवानके पादपद्मोंकी पूजा करते और जिसके घरमें पिस्तौल या बन्दूक मिलती, उसके घरमें घुसकर उसे छीन लाते। भवानन्दने सब किसीसे कह दिया था कि "अगर किसी घरमें एक ओर मणि-माणिक्य और हीरा-मोती हो और दूसरी ओर एक टूटी हुई बन्दूक पड़ी हो, तो सब मणि-माणिक्य और हीरा मोती छोड़कर वह टूटा बन्दूक ही ले आना।"

इसके बाद वे लोग गाँव-गाँवमें अपने दूत भेजने लगे। वे लोग जिस किसी ग्राममें जाते वहाँके हिन्दुओंको देख-देखकर कहते—"क्यों भाई! विष्णु-पूजा करोगे?" यही कह-कहकर वे २०-२५ आदमियोंका दल बाँध लेते और मुसलमानोंके गाँवमें जाकर उनके घरोंमें आग लगा देते थे। मुसलमान बेचारे इधर अपनी जान बचानेमें लगते, तबतक उधर सन्तान-सम्प्रदायवाले उनका सर्वस्व लूट-पाटकर विष्णु-भक्तोंको बाँट देते थे। लूटका माल पाकर जब गाँववाले बड़े आनन्दित होते,

तब ये लोग उन्हें विष्णु-मन्दिरमें ला प्रतिमाके पैर छुलाकर उन्हें सन्तान धर्ममें दीक्षित कर लेते थे। लोगोंने देखा कि सन्तान होनेमें तो बड़ा लाभ है। मुसलमानी सल्तनतकी अराजकता और कुशासनके कारण सब कोई मुसलमानोंसे जल उठे थे। हिन्दू धर्म लुप्त हुआ जा रहा था; इसलिये बहुतसे लोग हिन्दुत्वकी स्थापनाके लिये भी चिन्तित हो रहे थे, अतएव दिन-दिन सन्तानोंकी संख्या बढ़ने लगी। एक-एक दिनमें सैकड़ों और एक-एक महीनेमें हजारों नये-नये लोग आकर सन्तान बनने और भवानन्दके चरणोंमें सिर झुकाने लगे तथा दलके दल चारों ओर मुसलमानोंको दंड देनेके लिये जाने लगे। वे जहाँ कहीं राज-कर्मचारियोंको देख पाते, वहीं उनकी मरम्मत करने लगते। कभी-कभी तो उनके प्राण ही ले डालते थे। जहां कहीं सरकारी खजाना पाते उसपर छापा मारते और लूट-पाटकर घर ले आते। जहाँ कहीं मुसलमानोंकी बस्ती मिलती, उसमें आग लगा देते और गाँवके गाँव जलाकर धूलमें मिला देते। राजपुरुषगण इनका दमन करनेके लिये फौज रवाना करने लगे; पर इस समय सन्तानोंका दल खूब बंधा हुआ था। उनके पास हथियार भी काफी थे और वे ठीक भी हो गये थे। उनके वीर-दर्पके आगे मुसलमान सैनिकोंके पैर आगे नहीं बढ़ते थे। कदाचित् वे आगे आते तो सन्तानगण अपने अमित बल-पराक्रमसे उनपर भीषण आक्रमण करते, उनके दलको छिन्न-भिन्न कर हरि-हरिकी ध्वनि करते। यदि किसी सन्तानदलको मुसलमान सैनिक परास्त कर डालते तो उसी समय उसके सम्प्रदायका दूसरा दल वहां आ पहुँचता और जीतनेवालोंके सिर धड़से जुदा कर हरि-हरि कहता हुआ निकल जाता था।

इस समय परम प्रसिद्ध, भारतीय अंग्रेज-कुलके प्रातःसूर्य वारेन हेस्टिंग्स भारतवर्षके गवर्नर जनरल थे। कलकत्तेमें बैठे-बैठे लोहेकी सींकड़ तैयार कर उन्होंने सोचा कि मैं इसी सींकड़में ससद्वीपा और

ससागरा भूमिको बाँध रखूँगा। एक दिन सिंहासनपर बैठे हुए जगदीश्वरने भी 'तथास्तु' कह दिया था; पर अब वह दिन नहीं रहे। आज तो सन्तानोंकी भीषण हरिध्वनिको सुनकर वारेन हेस्टिंग्सका कलेजा भी काँप उठा।

वारेन हेस्टिंग्सने पहले फौजदारी सैन्यद्वारा विद्रोहको दबानेकी चेष्टा की, किन्तु उन सिपाहियोंका तो इन दिनों यह हाल हो रहा था कि वे यदि किसी बुढ़ियाके मुँहसे भी हरिनाम सुन लेते तो सिरपर पैर रखकर भाग जाते थे! इसीसे लाचार होकर वारेन हेस्टिंग्सने कप्तान टामस नामक एक बड़े ही चतुर सैनिककी अध्यक्षतामें कम्पनीके सिपाहियोंका एक दल विद्रोह दबानेके लिये भेजा।

कप्तान टामसने विद्रोह दमनका अत्यन्त उत्तम प्रबन्ध किया। उन्होंने राजा और जमींदारोंसे सिपाही माँगकर कम्पनीके सुशिक्षित, सुसज्जित और अत्यन्त बलिष्ठ देशी-विदेशी सैनिकोंके साथ मिला दिये। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्यको अलग-अलग टुकड़ियोंमें बाँटकर उन्होंने एक-एक टुकड़ीको सुयोग्य सैनिकोंके अधीन कर दिया। इसके बाद कौनसी टुकड़ी किस ओर भेजी जाय, इसका बन्दोबस्त किया। उन्होंने सब किसीसे कह दिया—"देखो तुम अमुक प्रदेशमें जाकर जालकी तरह फैल जाओ। जहाँ कोई शत्रु नजर आये, उसे वहीं चींटीकी तरह मसल डालना।" कम्पनीके सिपाहियोंमेंसे कोई गाँजेका दम लगाकर और कोई शराब पीकर बन्दूक लिये हुए सन्तानोंको मारने जाते, परन्तु सन्तानगण इतने असंख्य और ऐसे अजेय थे कि कप्तान टामसके सैनिक घासकी तरह कटते गये। हरि-हरिकी ध्वनिसे कप्तान टामसके कान बहरे हो गये।

दूसरा परिच्छेद

—:※:—

उन दिनों कम्पनीके अनेक रेशमकी कोठियाँ थीं। ऐसीही एक कोठी शिवग्राममें भी थी। डनवर्थ साहब उस कोठीके मालिक थे। उस समय इन कोठियोंकी रक्षाका बड़ा अच्छा बन्दोबस्त था। इसीसे डनवर्थ साहब किसी तरह अपनी जान बचा सके, पर उन्हें अपने बाल-बच्चोंको कलकत्ते भेज देना पड़ा। सबको भेजकर वे आप संतानोंके उपद्रव सह रहे थे। इसी समय कप्तान टामस साहब अपनी कुछ फौजके साथ वहाँ पहुँचे। इस समय संतानोंका उत्साह देखकर बहुत-से चोर-चाई तथा डोम-चमार और भुइयाँ नीच जातिवाले बेफिक्रीके साथ लूट-खसोट मचाने लगे थे। इन लोगोंने टामस साहबकी रसदपर भी छापा मारा। कप्तान साहबकी फौजके लिये गाड़ियोंपर बहुतसा उम्दा घी, मैदा, मुर्गी और चावल आदि चीजें लदी जा रही थीं यह देखकर डोम-चमारोंके मुँह में पानी भर आया। उन्होंने गाड़ीपर हमला कर दिया। परन्तु कप्तान टामसके सिपाहियोंके हाथमें जो बन्दूकें थीं उन्हींके कुन्देकी मारसे वे भाग गये। कप्तान टामसने कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज मैंने १५७ सिपाहियोंके ही सहारे १४७०० विद्रोहियोंको परास्त कर डाला है। विद्रोहियोंमेंसे २१५३ आदमी मरे, १२५३ घायल हुए और सात कैद कर लिये गये हैं। पर केवल यही अन्तिम बात रिपोर्ट भरमें सच्ची थी। कप्तान टामस, अपने मनमें ऐसा समझकर, मानों उन्होंने केनहिम या रसवाककी-सी कोई बड़ी भारी लड़ाई ही जीती है, घमण्डसे अकड़े मूछोंपर ताव देते हुए निर्भर इधर-उधर घूमने लगे, साथ ही डनवर्थ साहबको उपदेश भी देने लगे कि अब क्या डर है? अब अपने बाल-बच्चोंको कलकत्ते से यहीं ले आओ, विद्रोहका तो मैंने

अन्त ही कर दिया। डनवर्थ साहबने कहा—"अच्छी बात है आप यहाँ दस दिन और ठहर जाइये। देश थोड़ा और स्थिर हो जाय, तब मैं अपने पुत्र आदिको बुलवा लूँगा।" डनवर्थ साहबने बहुत-सी मुर्गियाँ और भेड़ें पाल रखी थीं। उनके यहाँका पनीर भी अच्छा होता था। तरह-तरहकी जंगली चिड़ियोंका मांस उनके भोजनालयकी शोभा बढ़ाया करता था। इधर लम्बी दाढ़ीवाला बावर्ची भी मानों द्रौपदीका ही अवतार था। इसलिये कप्तान टामस बड़ी बेतकल्लुफीके साथ वहीं रहने लगे।

इधर तो भवानन्द मन-ही-मन दाँत पीस रहे थे। वे यही सोच रहे थे कि कब टामस साहबका सिर काटकर द्वितीय सम्बरारिकी उपाधि धारण कर लूँ। अँग्रेज लोग भारतवर्षकी भलाई करने आये हैं, उस समय सन्तानोंकी समझमें यह बात नहीं आती थी। समझते भी कैसे? कप्तान टामसके समान अँग्रेज भी इस बातको नहीं जानते थे। उस समय यह बात विधाताके मनमें ही छिपी हुई थी। भवानन्द सोच रहे थे—"एक दिन इन असुरोंका सर्वस्वनाश करूँगा। सबको जमा होकर यहाँ चले आने दो, बस उनकी जरासी असावधानी देखते ही उनपर टूट पड़ूँगा, अभी जरा दूर-ही-दूर रहनेका काम है।" इसलिये वे अपने दल-बल समेत दूर-ही-दूर रहे। कप्तान टामस निष्कण्टक होकर द्रौपदीके गुणोंकी बानगी लेने लगे।

साहब बहादुरको शिकारका बड़ा शौक था, इसलिये वे कभी-कभी शिवग्रामके पासवाले जङ्गलमें शिकार खेलनेके लिये जाया करते थे। एक दिन टामस साहब डनवर्थ साहब के साथ घोड़ेपर सवार हो, कई एक शिकारियोंके साथ शिकार खेलने निकले। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि टामस साहब बड़े भारी साहसी और बलवीर्यमें अँगरेजोंमें भी अद्वितीय थे। वह घना जंगल बाघों भैंसों और भालुओंसे भरा हुआ होनेके कारण बड़ा भयावह था। इसलिये कुछ दूर आनेपर शिकारि-

योंने आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया। वे बोले—"बस, आगे भीतर जानेका रास्ता नहीं है; हम लोग तो अब आगे नहीं जा सकते।" एक बार डनवर्थ साहब इसी जंगलमें एक भयानक शेरके पंजेमें पड़ते-पड़ते बच गये थे, इसलिये उन्होंने भी आगे जाना स्वीकार नहीं किया—सबकी इच्छा लौटनेकी ही थी। कप्तान टामससे कहा—"तुम लोग न जाओगे, तो लौट जाओ, पर मैं तो अब नहीं लौटता।" यह कह, कप्तान साहब उस घोर जंगलमें घुस पड़े।

सचमुच उस जंगलमें रास्ता नहीं था। घोड़ा आगे न बढ़ सका, पर साहब घोड़ेको छोड़ कन्धेपर बंदूक लिये अकेले ही आगे बढ़े। वे घुसे तो बाघकी खोजमें थे, पर खोजते-खोजते हैरान हो गये, तो भी कहीं बाघ न दिखाई दिया। इसके बदले उन्होंने देखा कि एक बड़े भारी पेड़के नीचे खिले हुए फलोंवाली लताओं और छोटे छोटे पौधोंके बीचमें न जाने कौन बैठा है? वह एक नवीन संन्यासी था, जिसके रूपसे वह सारा जंगल उज्वल हो रहा था। खिले हुए फूल मानों उसके स्वर्गीय शरीरके सम्पर्कसे और भी अधिक सुगन्धमय हो गये थे। कप्तान साहब भौंचकसे हो रहे पर तुरन्त ही क्रोध आ गया। वे हिन्दुस्तानी बोली विचित्र तरहसे बोलते थे। उन्होंने पूछा—"टुम कौन हाय?"

संन्यासीने कहा—"मैं संन्यासी हूं।"

कप्तानने पूछा—"तुम बागी है?"

संन्यासी—"यह किस जानवरका नाम है?"

कप्तान—"हम टुमको गुली मार देगा।"

संन्यासी—"मार दो।

कप्तान मनही मन विचार कर रहे थे, कि गोली मारूँ या न मारूँ इतनेमें उस संन्यासीने बिजलीकी तरह तड़पकर साहबके हाथकी बन्दूक छीन ली। इसके बाद संन्यासीने अपना रक्षा-वरणचर्म खोल कर फेंक दिया और एक ही झटकेमें जटा भी हटाकर दूर कर दी। कप्तान

टामसने देखा कि एक अपूर्व सुन्दरी सामने खड़ी है। सुन्दरीने हँसते-हँसते कहा—"साहब! मैं स्त्री हूँ मैं किसीको मारती नहीं। मैं तुमसे पूछती हूँ कि हिन्दू-मुसलमानोंमें जब झगड़ा होता है, तुमलोग क्यों बीचमें कूदते हो? अपने घर चले जाओ।"

साहब—"टुम कौन हाय?"

शान्ति—"देखते तो हो, कि मैं संन्यासिनी हूँ तुम जिनके साथ लड़ाई करने आये हो, उन्हींमेंसे किसी एककी पत्नी हूँ।"

साहब—"टुम हमारा घरपर चलेगा?"

शान्ति—'क्या तुम्हारी रखेली होकर?"

साहब—"औरटका माफिक रहना, लेकिन शाडी नहीं होगा।"

शान्ति—"अच्छा, मैं भी तुमसे एक बात पूछती हूँ, हमारे घरपर पहले एक बन्दर था, पर हालमें वह मर गया! उसका पींजरा खाली पड़ा है। क्या तुम उसके पींजरेको आबाद करने चलोगे? मैं तुम्हारी कमरमें भी साँकल बाँध दूँगी। हमारे बगीचेमें खूब मोठे केले फलते हैं, उन्हे भर पेट खाया करना।"

साहब—"टुम बड़ा बहादुर औरट है। टुमारा साहस देखकर हम बहुट खुशी हुआ। टुम हमारा घारपर चलो। टुमारा खाविन्द टो लड़ाईमें मारा ही जायगा, फिर टुम क्या करेगा?"

शान्ति—"अच्छा, तो हमलोग अभीसे आपसमें एक बात तै कर रखें। युद्ध तो दो-चार दिनोंमें होगा ही। यदि इस लड़ाईमें तुम जीतोगे और मैं जीती बचूँगी, तो तुम्हारी रखेली होकर रहूँगी। पर कहीं हमारी जीत हुई, तो तुम हमारे घर आकर बन्दर बनकर पींजरेमें रहोगे और केले खाया करोगे न?"

साहब—"केला उमडा चीज है। इस वखट टुमारे पास है?"

शान्ति—"ले जा अपनी बन्दूक! ऐसी जंगली जातिसे बातें करनी भी बेवकूफी है?"

यह कह, बन्दूक फेंककर शान्ति हँसती हुई चली गयी।

तीसरा परिच्छेद

शांति साहबको वहीं छोड़कर हरिणीकी भांति उछलती कूदती जङ्गलके अन्दर न जाने कहाँ गायब हो गयी। थोड़ी देर बाद साहबको किसी स्त्रीके मधुरकण्ठसे निकला हुआ गीत सुनाई दिया।

"यह जोवन-जल-तरङ्ग कौन रोकि राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

फिर न जाने कहांसे सारंगीकी सुरीली तानमें भी यही गीत बज उठी,—

"यह जोवन-जल-तरंग कौन रोकि राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

फिर उसी सुरमें-सुर मिलाकर किसी पुरुषने भी गाया—

"यह जोवन-जल-तरंग कौन रोकि राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

तीनों सुरोंने एकमें मिलकर वनकी सारी लताओंको हिला डाला। शांति गाती हुई चली,.........

"यह जोवन-जल-तरंग कौन रोकि राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

नदिया बीच नैया जाती है, अन्धड़ पानी सह लेती है।
चतुर खिवैया डाँड़ चलावे, नहिं क्यों पार उतरिहौं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

बाँध टूटिगो बालू केरो, पूरन हुए मनोरथ मेरो,
गंगाधार ज्वार जब आया, कौन रोकि तोहे राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

सारंगीमें भी यही गीत बज रहा था—

गङ्गाधार ज्वार जब आया, कौन रोक ताहे राखि है ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !!"

जहाँ घनघोर जङ्गल था, बाहरसे देखनेपर कहीं कुछ नहीं दिखाई देता था, शान्ति उसी ओर चली गयी। वहाँ शाखा-पल्लवोंके बीच छिपा हुआ छोटा-सा झोपड़ा था। उसके खम्भे वगैरह डालोंके थे, छाजन पत्तोंका, जमीन काठकी और गच मिट्टीकी थी। लताद्वारको हटाकर शान्ति उसी झोपड़ेके अन्दर घुसी। वहीं जीवानन्द बैठे हुए सारंगी बजा रहे थे।

शान्तिको देखकर जीवानन्दने पूछा—"इतने दिन बाद गंगामें ज्वार आया है क्या ?"

शान्तिने हँसकर उत्तर दिया—"नदी नालोंको डुबाकर गंगामें ज्वार आनेपर भी कहीं पानी वेगसे चलता है ?"

जीवानन्दने उदास होकर कहा—"देखो शान्ति ; एक दिन व्रत भंग हो जानेके कारण मेरे प्राण तो न्यौछावर हो ही चुके हैं, क्योंकि पापका प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। अबतक तो मैं कभीका प्रायश्चित्त कर चुका होता, पर तुम्हारे ही अनुरोधसे नहीं कर सका, पर अब देखता हूँ कि बड़ी भारी लड़ाई शीघ्र ही छिड़ा चाहती है। उसी युद्धक्षेत्रमें मुझे उस पापका प्रायश्चित्त करना ही होगा, इन प्राणोंको निश्चय ही त्यागना पड़ेगा मेरे प्रायश्चित्त करनेके दिन—"

शान्तिने उन्हें आगे और कुछ नहीं कहने दिया, झटपट बोल उठी—"मैं तुम्हारी धर्मपत्नी, सहधर्मिणी और धर्मकी सगिनी हूँ। तुमने बहुत बड़ा धर्मका काम अपने सिरपर उठाया है। उसीमें तुम्हारी सहायता करनेके लिये मैं घर छोड़कर यहाँ आयी हूँ। दोनों जने मिलकर एक साथ धर्माचरण करेंगे, यही सोचकर मैं घर छोड़कर जंगलमें आ बसी हूँ। मैं तुम्हारे धर्मकी वृद्धि करूँगी ! धर्मपत्नी होकर

तुम्हारे धर्ममें विघ्न क्यों डालूँगी? विवाह लोक-परलोक—दोनोंके लिये किया जाता है। सोचकर देखो, मेरा-तुम्हारा विवाह तो इस लोकके लिए हुआ ही नहीं, केवल परलोकके लिए हुआ है। परलोकमें हमें दूना फल मिलेगा। फिर प्रायश्चित्तकी बात कैसी? तुमने कौन-सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा यही, कि किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठोगे। अब बताओ, कि तुम कहाँ और कब मेरे साथ एक आसनपर बैठे थे। फिर प्रायश्चित्त कैसा? हाय प्रभो! तुम मेरे गुरू हो; फिर मैं तुम्हें क्या धर्म सिखलाऊँगी? तुम वीर हो, तुम्हें मैं वीरव्रत क्या सिखलाऊँगी?"

आनन्दसे गद्‌गद् हो, जीवानन्दने कहा—"क्यों नहीं? अभी तो तुमने मुझे सिखलाया!"

शान्ति प्रफुल्लित चित्तसे कहने लगी—"और देखो, प्रभो! हमारा विवाह इस लोकके लिये भी निष्फल कैसे हुआ? तुम मुझे प्यार करते ही हो, मैं तुम्हें जीसे चाहती हूँ, फिर इससे बढ़कर इस लोकमें और कौन-सा फल चाहिये? बोलो "बन्देमातरम्।"

दोनों व्यक्ति एक स्वरसे "वन्देमातरम्" गाने लगे।

चौथा परिच्छेद

एक दिन भवानन्द गोस्वामी नगरमें गये और चौड़ी सड़क छोड़कर अन्धेरी गलीमें घुसे। गलीमें दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे मकान खड़े थे। सूर्य भगवान दोपहरमें भी एकाध बार ही इस गलीके भीतर झाँक लेते हैं। नहीं तो वहाँ बराबर अन्धकार ही अन्धकार रहता है। उसी गलीके पासवाले एक दोतल्ले मकानमें भवानन्द ठाकुर घुस पड़े। नीचेके जिस घरमें एक अधेड़ स्त्री बैठी भोजन बना रही थी, वहाँ जाकर भवानन्दमहाप्रभु उपस्थित हुए। स्त्री अधेड़, मोटी-ताजी, काली,

सफेद कपड़े पहने, माथेमें चन्दन लगाये, सिरपर बालोंका जूड़ा बांधे थी। हाड़ीके कोरमें भात चलानेसे कलछी ठक-ठक बोल रही थी। फर-फर करके उसके सिरके बाल हवामें उड़ रहे थे, वह आप ही-आप न जाने क्या बड़बड़ा रही थी और उसके चेहरेके चढ़ाव-उतारके साथ-साथ उसके बालोंका लहराना कुछ और ही शोभा दे रहा था। इसी समय भवानन्द महाप्रभु उस घरमें घुस पड़े और बोले—"पण्डिताइन-जी, प्रणाम।" पण्डिताइनजी भवानन्दको देखकर जल्दी-जल्दी कपड़े सम्हालने लगीं। उनकी इच्छा थी कि सिरका सुहावना जूड़ा खोल डालें पर जूठा हाथ होनेके कारण वैसा न कर सकीं। एक तो उनके वे बाल स्वभावतः ही मुलायम थे तिसपर उनमें पूजाके समयका मोलसरी-का एक फूल लटका रह गया था। उन्होंने कितना चाहा कि उसे अञ्चलसे छिपालें, पर अञ्चलमें वह छिप न सका, कारण वे सिर्फ पाँच हाथकी साड़ी पहनी हुई थीं। वह पाँच हाथकी साड़ी उनकी मोटी तोंदको ही ढकनेमें खतम हो गयी थी, तिसपर दुःसह भार ग्रस्त हृदय-मण्डलकी भी उसे आबरू बचानी पड़ती थी। अन्ततोगत्वा कन्धे तक पहुँचते-पहुँचते ही साड़ीने जवाब दे दिया। कानके पास आकर चुपकेसे कहा बस, अब इसके आगे मुझसे नहीं जाया जायगा। लाचार लज्जा और सङ्कोचवश गोरी ठकुराइनने अञ्चलको कानके पास लाकर हाथसे पकड़ रखा और आगेसे आठ हाथकी साड़ी पहननेकी मन-ही-मन प्रतिज्ञा करते हुए कहा—"कौन गुसाईंजी! आओ, आओ। मुझे प्रणाम क्यों करते हो भाई?"

भवा०—"तुम भाभी जो ठहरी?"

गौरी—"आदरसे जो चाहो कह लो; नहीं तो तुम ठहरे गुसाईं बाबा—साक्षात देवता! खैर जब प्रणाम किया ही तो मैं भी आसीस देती हूँ कि जिओ-जागो। हाँ, प्रणाम कर भी सकते हो, क्योंकि उमरमें मैं तुमसे बड़ी हूँ।"

इस समय गौरीदेवीकी उमर भवानन्दसे २५ वर्ष अधिक होगी। सुचतुर भवानन्दने कहा—"यह क्या भाभी! तुम यह क्या कहती हो? तुम्हें रसीली-छबीली देखकर ही भाभी कहकर पुकारता हूं। नहीं तो तुम्हें याद है या नहीं, उस बार हिसाब लगाकर देखा गया था, तो तुम मुझसे छः वर्ष छोटी निकली थी? हम वैष्णवोंमें तो जानती हो हो कि हर तरहके लोग हैं। इसलिये मेरी इच्छा होती है कि मठके ब्रह्मचारीजीकी आज्ञा लेकर तुम्हारे साथ सगाई कर लूँ। यही कहनेके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

गौरी—"छि! यह भी कोई बात है? मैं ठहरी विधवा—"

भवा०—"तो क्या विधवाको सगाई नहीं होती?"

गौरी—"अरे भाई! जाओ, जो मनमें आवे करो। तुम लोग पण्डित ठहरे। हम औरत क्या जाने? खैर, कब सगाई होगी!"

भवानन्दने बड़ी मुश्किलसे अपनी हँसी रोककर कहा—"बस, एक बार उस ब्रह्मचारीसे मिलने भरकी देर है। अच्छा, यह तो कहो वह कैसी है?"

गौरी उदास हो गयी। उसने मन ही मन सोचा कि मालूम होता है सगाईकी बात योंही दिल्लगीके तौरपर कह रहा था? बोली—"कैसी क्या? जैसी थी, वैसी है।"

भवा०—"तुम एक बार जाकर उसको देखो, कि कैसी है। उससे कहना कि मैं उससे मिलने आया हूँ।"

यह सुन, गौरीदेवी हाथकी कलछी जमीन पर रख, हाथ धो लम्बी-लम्बी डग भरती दोतल्लेपर जानेके लिये सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं। ऊपर एक कमरेमें एक फटी चटाईपर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी थी। पर उसके सौन्दर्यपर भीषण छाया पड़ी थी। मध्याह्नकालमें कूल परिप्लाविनी प्रसन्न सलिला, विपुल-जल कल्लोलिनी स्रोत-स्वतीके ऊपर जैसी घने बादलोंकी छाया पड़ जाती है वैसी ही छाया पड़ी हुई थी।

नदीमें तरंगे उठ रही थीं, तीरपर कुसुमित वृक्ष हवाके झोंकेसे हिल रहे थे, कोई-कोई फूलोंके भारसे झुक रहे थे, अट्टालिकाओंकी श्रेणी भी अपनी शोभा दिखा रही थी, डाड़ोंकी चोटसे नदीका जल चञ्चल हो रहा था, दोपहर का सुहावना समय था, पर उस काली छायामें सारी शोभा क्षीण थी। उस सुन्दरीकी भी वही दशा थी। पहलेकेसे सुन्दर चिकने और चञ्चल केश, पहलेकी तरह प्रशान्त और उन्नत ललाटपर किसीकी निराली लेखनीसे अङ्कित भौंहें, पहलेकीसी बड़ी साश्रु और काली पुतलियोंवाली आँखें—सभी हैं, पर न तो उनमें पहलेकी भांति कटाक्ष है, न चञ्चलता है, पर कुछ-कुछ नम्रता है। अधरोंपर वही पहलेकी सी ललाई है, हृदय उसी तरह भाव पूर्ण है, बांहें वैसी ही वनलताकी कोमलताको भी मात करनेवाली हैं, पर आज न तो वह कान्ति है न ज्योति, न चञ्चलता और रस अधिक क्या, वह यौवन ही अब न रहा, केवल सौन्दर्य और माधुर्य रहा। उसमें और दो नयी बात आ गयी है—धीरता और गम्भीरता। पहले इन्हें देखनेसे मालूम होता था कि यह मनुष्य-लोककी अनुपम सुन्दरी है, पर आज देखनेसे मालूम होता है कि यह देव-लोककी कोई शापग्रस्ता देवी हैं। चारों ओर भोजपत्रपर लिखी हुई पोथियाँ फैली हुई हैं, दीवारमें खूँटोंपर सुमिरिनी माला लटक रही है और जगह-जगह जगन्नाथ, बलराम, सुभद्राका पट लगा है, कहीं कालिदमन, नव-नारी कुञ्जर वस्त्रहरण, गोवर्द्धन धारण आदि ब्रजलीलाओंके चित्र अङ्कित हैं। चित्रोंके नीचे लिखा है—"चित्र है या विचित्र ?" भवानन्दने उसी घरमें प्रवेश किया।

भवानन्दने पूछा—"कल्याणी! कैसी हो ? तुम्हारा शरीर तो अच्छा है न ?"

कल्याणी—"आप क्या इस सवालका पूछना बन्द न करेंगे ? मेरा शरीर अच्छा रहनेसे न आपकी ही कुछ भलाई है, न मेरी ही।"

भवा०—"जो वृक्ष रोपता है, वह उसमें नित्य जल छोड़ा करता है। उस वृक्षको पनपते देखकर उसे सुख होता है। मुर्दे शरीरमें मैंने जान डाली थी, इसलिए पूछता रहता हूँ कि वह जान ज्यों-की-त्यों है या नहीं ?"

कल्याणी—"कहीं विषका वृक्ष भी सूखता है ?"

भवा०—"तो क्या जीवन विष है"

कल्याणी—"नहीं तो मैं क्यों अमृत पीकर उसका नाश करने जाती ?"

भवा०—"मैंने कई दफे सोचा, पर साहस न हुआ कि तुमसे पूछूँ कि किसने तुम्हारा जीवन विषमय कर दिया ?"

कल्याणी—"किसीने नहीं, यह जीवन तो आप ही विषमय है। मेरा जीवन विषमय है, आपका जीवन विषमय है, सारे संसारका जीवन विषमय है।"

भवा०—"ठीक है कल्याणी! मेरा जीवन सचमुच विषमय है। जिस दिन······हां, तो तुम्हारा व्याकरण पढ़ना समाप्त हो गया ?"

कल्याणी—"नहीं।"

भवा०—"और कोष ?"

कल्याणी—"उसे पढ़नेमें तो जी नहीं लगता।"

भवा०—"पहले तो मैंने पढ़ने-लिखनेमें तुम्हारा बड़ा उत्साह देखा था, अब ऐसी अश्रद्धा क्यों हो गयी ?"

कल्याणी—"जब आपकेसे पण्डित भी महापापी होते हैं तब न लिखना-पढ़ना ही अच्छा है। प्रभो! मेरे स्वामीका कुछ हाल बतलाइये।"

भवा०—"तुम बराबर यह बात क्यों पूछती हो ? वे तो तुम्हारे लिये मरे हुएके बराबर हैं।"

कल्याणी—"मैं उनके लिये मर गयी हूँ सही, पर वे मेरे लिये कभी नहीं मर सकते।"

भवा०—"वे तुम्हारे लिये मरे तुल्य हो जायंगे, यही सोचकर तो तुमने अपनी जान दी थी। फिर बार-बार वही बात तुम क्यों पूछती हो?"

कल्याणी—"मरने हीसे क्या सम्बन्ध टूट जाता है? कहिये वे कैसे हैं?"

भवा०—"अच्छे हैं।"

कल्याणी—"कहाँ हैं, पदन्चिह्नमें?"

भवा०—"हाँ वहीं हैं।"

कल्याणी—"क्या कर रहे हैं?"

भवा०—"जो करते थे, वही करते हैं। किला और हथियार तैयार कर रहे हैं। उन्हींके बनाये हुए अस्त्रोंसे आजकल सहस्र सहस्र सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उनके प्रतापसे तोप, बन्दूक गोला गोली और बारूदका हमलोगोंको अभाव नहीं है। सन्तानोंमें आजकल वे ही श्रेष्ठ समझे जाते हैं। वे हमलोगोंका बड़ा उपकार कर रहे हैं—दाहिने हाथ बन रहे हैं।"

कल्याणी—"मैं यदि प्राण त्याग नहीं करती तो वे इतना थोड़े ही कर सकते थे। जिसकी छातीमें कच्चा घड़ा बँधा होता है, वह थोड़े ही भवसागर पार हो सकता है? जिसके पैरोंमें जञ्जीर पड़ी होती है वह थोड़े ही दौड़ सकता है? संन्यासी, तुमने क्षुद्र जीवनको क्यों बचाया था?"

भवा०—"स्त्री सहधर्मिणी पतिके धर्मोंमें सहायक होती है।"

कल्याणी—"छोटे-छोटे धर्मोंमें। बड़े-बड़े धर्मोंमें तो वह कंटक ही प्रमाणित होती है। मैंने विषकण्टक द्वारा उनके अधर्मका काँटा

निकाल फेंका था। छिः पापी, दुराचारी ब्रह्मचारी! तुमने मुझे मरनेसे क्यों बचाया?"

भवा०—"मैंने जो प्राण तुम्हें लौटा दिये, उन्हें मेरी ही थाती समझ लो और बोलो, तुम उन्हें मेरे हवाले कर सकती हो?"

कल्याणी—"अच्छा यह तो कहिये, आपको मेरी सुकुमारीका कुछ हाल मालूम है वा नहीं?"

भवा०—"बहुत दिनोंसे कुछ नहीं मालूम। जीवानन्द बहुत दिनोंसे उधर गये ही नहीं?"

कल्याणी—"तो क्या आप मुझे उसका संवाद नहीं ला दे सकते? स्वामी भले ही छूट जायँ, पर जीते जी कन्याको क्यों छोड़ूँ? अगर इस समय सुकुमारीको पा जाऊँ, तो यह जीवन कुछ सुखमय हो सकता है, पर आप मेरे लिये इतना तरद्दुद क्यों उठाने लगे?"

भवा०—"क्यों नहीं उठाऊँगा कल्याणी? मैं तुम्हारी लड़की ला दूँगा, पर इसके बाद?"

कल्याणी—"इसके बाद क्या?"

भवा०—"स्वामी?"

कल्याणी—"उन्हें तो मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया है।"

भवा०—"यदि उनका व्रत सम्पूर्ण हो जाय?"

कल्याणी—"तब उन्हींकी होकर रहूँगी। वे क्या जानते हैं कि मैं मरी नहीं हूँ?"

भवा०—"नहीं।"

कल्याणी—"क्या आपसे उनकी देखा देखी नहीं होती।"

भवा०—"होती है।"

कल्याणी—"मेरी कुछ बात नहीं चलती?"

भवा०—"नहीं, जो स्त्री मर गयी, उससे स्वामीका नाता ही क्या रह गया?"

कल्याणी—"आप क्या कह रहे हैं?"

भवा०—"तुम्हारा नया जन्म हुआ है, अब तुम फिर विवाह कर सकती हो।"

कल्याणी—"मेरी कन्याको ला दो।"

भवा०—"ला दूँगा। तुम फिर विवाह कर सकती हो?"

कल्याणी—"क्या तुम्हारे साथ?"

भवा०—"विवाह करोगी?"

कल्याणी—"क्या तुम्हारे ही साथ?"

भवा०—"यदि ऐसा ही हो?"

कल्याणी—"तो सन्तानधर्म कहाँ जायगा।"

भवा०—"अथाह जलमें डूब जायगा।"

कल्याणी—"और परलोक?"

भवा०—"वह भी अथाह जलमें डूब जायगा।"

कल्याणी—"और यह महाव्रत?"

भवा०—"यह भी।"

कल्याणी—"किसलिये तुम इन सबको अथाह जलमें डुबानेको तैयार हो?"

भवा०—"तुम्हारे ही लिए। देखो, मनुष्य, ऋषि-सिद्धि, देवता—सबका चित्त अवश रहता है। सन्तानधर्म मेरा प्राण है सही; पर आज पहले-पहल मुझे कहना पड़ता है कि तुम मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर हो। जिस दिन मैंने तुम्हें जिलाया, उसी दिनसे तुम्हारे चरणोंकी क्रीतदास हो रहा हूँ। मैं नहीं जानता था कि संसारमें इतनी रूपराशि है। यदि मैं जानता कि किसी दिन ऐसी रूपराशि मेरी आँखोंतले आयगी, तो मैं कदापि सन्तानधर्म नहीं ग्रहण करता। यह धर्म इस आगमें पड़कर राख हो जाता है। मेरा धर्म जलकर राख हो चुका; सिर्फ प्राण रह गये हैं। आज चार वर्षोंसे ये प्राण भी जल रहे हैं। अब ये भी

न बचेंगे। ओह! कैसी जलन है, कल्याणी! कैसी ज्वाला है! पर इसमें जलने योग्य ईन्धन अब नहीं रह गया। प्राण निकल रहे हैं। चार सालतक सहता आया; अब नहीं सहा जाता। बोलो, अब तुम मेरी होगी या नहीं?"

कल्याणी—"मैंने तुम्हारे ही मुँहसे सुना था कि सन्तानधर्मका यह नियम है कि जो इन्द्रियोंपर वश नहीं रखता उसे प्राण देकर इस पापका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। क्या यह बात ठीक है?"

भवा०—"हाँ, ठीक है।"

कल्याणी—"तब तो तुम्हारे इस पापका प्रायश्चित्त मृत्यु ही है।"

भवा०—"हाँ, इसका प्रायश्चित्त मृत्यु ही है।"

कल्याणी—"यदि मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर दूँ तो तुम प्राण दे डालोगे।"

भवा०—"हाँ जरूर दे डालूँगा।"

कल्याणी—"और यदि नहीं पूर्ण करूँ तो?"

भवा०—"यदि नहीं पूर्ण करो तो भी मुझको मरकर इस पापका प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा, क्योंकि मेरा चित्त इन्द्रियोंका दास हो गया है।"

कल्याणी—"मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण नहीं करूँगी। बोलो, तुम कब मरोगे?"

भवा०—"आगामी युद्धमें।"

कल्याणी—"बस, तो अब यहांसे चले जाओ। बोलो, मेरी कन्या भेज दोगे या नहीं?"

भवानन्दने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"ला दूँगा। क्या मेरे मर जानेपर मुझे स्मरण रखोगी?"

कल्याणीने कहा—"रखूँगी, तुम्हें व्रतच्युत, अधर्मी समझ कर याद किया करूँगी।"

भवानन्द चले गये। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

पाचवां परिच्छेद

भवानन्द सोचते-विचारते मठकी ओर चले। जाते ही जाते रात हो गयी। वे अकेले थे। अकेले ही जङ्गलमें घुसे! वनमें घुसनेपर उन्होंने देखा कि कोई उनके आगे-आगे चला जा रहा है। भवानन्दने पूछा—"कौन जा रहा है?"

आगे जानेवालेने कहा—"अगर तुम्हें पूछना आता, तो ठीकसे जवाब भी देता। यही समझ लो कि पथिक हूँ?"

भवा०—"वन्दे।"

आगे जानेवाला बोला—"मातरम्?"

भवा०—"मैं हूँ, भवानन्द गोस्वामी।"

आगे जानेवाला—"मैं भी धीरानन्द हूँ।"

भवा०—"कहाँ गये थे धीरानन्द?"

धीरा०—"आपहीकी खोजमें।"

भवा०—"क्यों किसलिये?"

धीरा०—"एक बात कहनी थी।"

भवा०—"कौनसी बात?"

धीरा०—"एकान्तमें कहनेकी बात है।"

भवा०—"यहीं कहो न यहाँ तो और कोई नहीं है।"

धीरा०—"आप नगरमें गये थे?"

भवा०—"हाँ!"

धीरा०—"गौरी देवीके घरपर?"

भवा०—"तुम भी गये थे क्या?"

धीरा०—"वहाँ एक बड़ी ही सुन्दर युवती रहती है।"

भवानन्द कुछ आश्चर्यमें पड़ गये, साथ ही कुछ डर भी गये। बोले—"यह कैसी बातें कर रहे हो?"

धीरा०—"आपने उससे मुलाकात की थी न?"

भवा०—"फिर क्या हुआ?"

धीरा०—"आप उसपर अतिशय अनुरक्त हो रहे हैं।"

भवा०—(कुछ सोचकर) "धीरानन्द! तुमने इतनी खोज—ढूँढ़ किसलिये की? देखो, धीरानन्द! तुम जो कहते हो, सब सच है, पर यह तो कहो, यह बात तुम्हारे सिवा और भी किसीको मालूम है?"

धीरा०—"और कोई नहीं जानता!"

भवा—"तब यदि मैं तुम्हारी जान ले लूँ तो बदनामीसे बच जा सकता हूँ।"

धीरा०—"हाँ।"

भवा०—"तब आओ, इसी निर्जन स्थानमें हम दोनों युद्ध करें। या तो मैं तुम्हें मारकर निष्कण्टक हो जाऊँगा या तुम मुझे मारकर मेरी सारी जलन मिटा दोगे। हथियार पास है?"

धीरा०—"है, खाली हाथ भला कौन तुम्हारे साथ ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करता? यदि तुम युद्ध ही करना चाहते हो तो आओ, मैं अवश्यही युद्ध करूँगा। एक संतानका दूसरे संतानसे विरोध करना अनुचित है; किन्तु आत्मरक्षाके लिये किसीसे विरोध करना बुरा नहीं है। पर मैं जो सब बातें कहनेके लिये तुम्हें ढूँढ़ रहा था, उन्हें सुनकर लड़ते तो ठीक था।"

भवा०—"हर्ज ही क्या है? कह डालो।"

भवानन्दने तलवार निकालकर धीरानन्दके कँधेपर रखी। धीरानन्द टससे मस न हुए।

धीरा०—"मैं यही कह रहा था कि तुम कल्याणीसे विवाह कर लो।"

भवा०—"वह कल्याणी ही है, यह भी जानते हो?"

धीरा०—"हाँ तो तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

भवा०—"उसका स्वामी मौजूद है।"

धीरा०—"वैष्णवोंमें इस तरहका विवाह होता है।"

भवा०—"ऐसा मुगडे हुए संन्यासियोंमें होता है, संतानोंमें नहीं। संतानोंको विवाह करना ही नहीं चाहिये।"

धीरा०—"क्या सन्तानधर्म छोड़ नहीं सकते? तुम्हारे तो प्राण निकले जा रहे हैं। छिः! छिः! यह क्या कर डाला? मेरा कंधा कट गया!"

सचमुच, धीरानन्दके कंधेसे खून जारी हो रहा था।

भवा०—"तुम किस मतलबसे मुझको धर्मके विरुद्ध सलाह देने आये हो इसमें अवश्य ही कोई तुम्हारा स्वार्थ है।"

धीरा०—"वह भी कहता हूँ; पर जरा तलवार हटा लो, सब कुछ कह दूँगा। इस संतानधर्मके मारे मैं तो हैरान हो गया, मैं तो अब इसे छोड़कर स्त्री-पुत्रके साथ दिन बितानेके लिये अधीर हो रहा हूँ। मैं अब इसे छोड़ूंगा, मेरा घर जाकर रहना भी मुश्किल है। सभी मुझे विद्रोही जानते हैं, जहाँ घर जाकर रहने लगा कि झट राज पुरुष-गण आकर मेरा सिर उतार ले जायेंगे। नहीं तो सन्तानगण ही मुझे विश्वासघातक समझ कर मार डालेंगे। इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुम्हें भी अपने ही रास्तेपर ले चलूँ?"

भवा०—"क्यों मुझे ही क्यों?"

धीरा०—"यही तो असल मतलबकी बात है। सभी सन्तानगण तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। इन दिनों सत्यानन्द यहाँ हैं ही नहीं, तुम्हीं सबके सिरधरू हो। तुम इस सेनाको लेकर युद्ध करोगे तो तुम्हारी जीत अवश्य होगी, युद्ध जय होनेपर तुम अपने ही नामसे राज्य स्थापित कर लेना। सेना तुम्हारे वश है ही। तुम राजा बनो, कल्याणी तुम्हारी पटरानी बने। मैं तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्रका मुँह देखते हुए दिन बिताऊँ और तुम्हें आशीर्वाद देता रहूँ यही मेरी इच्छा है, चाहे सन्तानधर्म अगाध जलमें डूब जाय इसकी मुझे परवाह नहीं।"

यह सुन भवानन्दने धीरानन्दके कन्धेपरसे तलवार हटा ली और

बोले— "धीरानन्द ! तुम युद्ध करो । मैं तुम्हें मार डालूँगा । मैं इन्द्रियों-का दास होकर भले ही रहूँ, पर विश्वासघातक होकर नहीं रह सकता । तुम मुझे विश्वासघातक बननेकी सलाह दे रहे हो और आप भी विश्वासघातक हो रहे हो, इसलिये तुम्हें मार डालनेसे मुझे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा । मैं तुम्हें जरूर मार डालूँगा ?"

बात पूरी होते-न होते धीरानन्द बेतहाशा भाग चला । भवानन्दने उसका पीछा नहीं किया । वे कुछ देरतक अनमनेसे रहे, पीछे उसे बहुत ढूढ़ा, पर उसका कहीं पता न लगा ।

छठां परिच्छेद

—:०*०*०:—

मठमें न जाकर भवानन्द घने जगलमें चले गये । उस जङ्गलमें एक पुरानी इमारत भग्नावशेष अवस्थामें पड़ी थी । टूटी फूटी ईंटोंके ढेरपर जंगली लताएँ और पौधे बहुतायतसे उग गये थे । वहाँ असंख्य सर्प रहते थे । उस खंडहरके अन्दर कुछ साफ सुथरी और साबित एक कोठरी थी । भवानन्द वहीं जाकर बैठ गये और सोचने लगे ।

घर अन्धेरी रात है । उसपर लम्बा-चौड़ा और घना जङ्गल जिसमें आदमीका पूत भी नहीं और वह वृक्ष लताओंके मारे ऐसा बीहड़ हो रहा है; कि बेचारे जङ्गली पशु भी उसके अन्दर जानेका रास्ता नहीं पाते । वह बन अतिविशाल जनशून्य, अन्धकारमय, दुर्भेद्य और नीरव है । रह-रहकर केवल बाघका गरजना अथवा जङ्गली पशुओंका भूख या डरसे तड़पना और चीत्कार सुनायी पड़ता जाता है । कभी-कभी किसी बड़े पक्षीके पख फड़फड़ानेका शब्द सुनायी देता है और कभी-कभी आपसमें एक दूसरेको मारनेवाले या खा जानेवाले जानवरोंकी दौड़-धूपका शब्द सुनाई देता है । उस निर्जन, अन्धकारपूर्ण खडहरमें अकेले भवानन्द बैठे हैं । उनके लिये पृथ्वी मानों रही नहीं गयी अथवा

केवल उपादानमयी हो रही है। उस निविड़ अन्धकारमें भवानन्द हथेलीपर सिर रखे सोच रहे हैं—वे ऐसी प्रगाढ़ चिन्तामें निमग्न हो रहे हैं कि न तो उनकी देह हिलती है, न जोर-जारसे सांस चलती है, न किसी बातका भय मालूम होता है। वे मन-ही-मन कह रहे हैं—"जो होनेवाला है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं भागीरथीकी जलतरंगके पास आकर भी छोटेसे हाथीके बच्चेकी तरह इन्द्रियस्रोतमें डूब मरा, इसीका बड़ा भारी दुःख रहा। एक क्षणमें यह देह मिट्टीमें मिल जा सकती है। देहका ध्वंस होते ही इन्द्रियोंका ध्वंस हो जायेगा। फिर मैं इन्द्रियोंके वशमें क्यों गया? मेरा मरना ही ठीक है। धर्मत्यागी कहलाकर जीना! राम राम। मैं तो अब मरूंगा ही।"

इसी समय ऊपरसे उल्लू बोल उठा। भवानन्द और जोरसे कह उठे—"ओह यह कैसा शब्द है! कानोंको ऐसा लगा मानों यह मुझे पुकार रहा है। मैं नहीं जानता, किसने यह शब्द किया; किसने मुझे पुकारा, किसने मुझे यह उपदेश दिया, किसने मुझे मरनेको कहा। पुण्यमयी अनन्ते! तुम शब्दमयी हो, पर तुम्हारे शब्दका मर्म तो मैं समझ नहीं सकता। मुझे धर्ममें मति दो, पापसे दूर करो। हे गुरुदेव! ऐसा अशीर्वाद करो, जिसमें धर्ममें मेरी मति सर्वदा बनी रहे।"

इसी समय उस भीषण वनमें अत्यन्त मधुर गम्भीर और मर्मभेदी मनुष्यकंठ सुनाई पड़ा, मानों किसीने कहा—"मैं आशीर्वाद करता हूँ, कि तुम्हारी मति धर्ममें अविचल भावसे बनी रहे।"

भवानन्दके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। यह क्या? यह तो गुरुदेवका ही कण्ठ-स्वर है! बोले—"महाराज! आप कहाँ हैं? आइये, आकर इस दासको दर्शन दीजिये।"

पर न तो किसीने दर्शन दिये, न उत्तर दिया! भवानन्दने बार-बार पुकारा; पर कोई न बोला। उन्होंने इधर-उधर बहुत ढूंढ़ा, पर कहीं किसीको न पाया।

रात बीती, प्रभात हुआ और प्रातःकालके सूर्य उदित होकर जङ्गली पेड़पौधोंकी हरी-हरी पत्तियोंपर अपनी किरणें फैलाने लगे, तब भवानन्द वहाँसे चलकर मठमें पहुँचे। उस समय उनके कानोंमें "हरे मुरारे हरे मुरारे!" की ध्वनि सुनाई पड़ी। सुनते ही वह पहचान गये कि यह सत्यानन्दका कण्ठस्वर है। वे समझ गये कि प्रभु लौट आये हैं।

सातवां परिच्छेद

—:o:—

जीवानन्दके कुटीसे बाहर चले जानेपर शांति फिर सारंगीकी सुरीली ध्वनिके साथ अपना मीठा गला मिलाकर गाने लगी—

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशवधृत मीन-शरीरम्,
जय जगदीश हरे!

गोस्वामी जयदेव विरचित राग, ताल, लययुक्त स्तोत्र, शांति-देवीके कंठसे निकलकर उस अनन्त काननकी अनन्त नीरवताको भेदकर वर्षा-काल की उमड़ी हुई नदीकी मलयानिलसे चंचल की हुई तरंगोंके समान मधुर मालूम होने लगा, तब उसने फिर गाया—

"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्;
सदय हृदय दर्शित पशुघातम्,
केशवधृत बुद्ध शरीरं,
जय जगदीश हरे!"

उसी समय बाहरसे न जाने कितने मेघ गर्जनकी तरह बड़े ही गम्भीर स्वरसे गाया—

"म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृत कल्कि-शरीरं,
जय जगदीश हरे!"

शान्तिने भक्तिभावसे सिर झुकाकर सत्यानन्दके पैरोंकी धूलि सिर चढ़ाई, बोली—"प्रभो, मेरे बड़े भाग्य जो आज आपके चरणकमल यहाँतक आये। आज्ञा कीजिये, मुझे क्या करना होगा?"

यह कह, फिर सारङ्गीका सुर मिलाकर उसने गाया—

"तव चरणप्रणाता वयमिति भावय, कुरु कुशलं प्रणतेषु।"

सत्यानन्दने कहा—"देवी! तुम्हारी कुशल ही होगी?"

शान्ति—"सो कैसे महाराज! आपकी आज्ञा तो मेरे वैधव्यके हेतु है।"

सत्या०—"पहले मैं तुम्हें पहचानता नहीं था बेटी! मैं रस्सीका जोर अजमाये बिना ही उसे खींच रहा था। तुम्हारा ज्ञान मुझसे कहीं बढ़ा हुआ है। तुम जो उपाय अच्छा समझो करो। जीवानन्दसे यह मत कहना कि मैं सब कुछ जान गया हूँ। तुम्हारे लिये वे अपनी जान बचानेकी चेष्टा करेंगे। अबतक बचाते भी रहे हैं। बस, इसीसे मेरा काम हो जायगा।"

यह सुनते ही उन नील-प्रफुल्ल लोचनोंमें आषाढ़ मासमें चमकने-वाली बिजलीकी तरह क्रोधाग्नि पैदा हो आयी। शांतिने कहा—"यह क्या महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं और मेरे स्वामी एक प्राण दो शरीर हैं। अभी आपसे मेरी जो-जो बातें हुई हैं वह सब मैं उनसे कह दूँगी। उन्हें मरना होगा तो वे मरेंगे ही, इसमें हर्ज ही कौन-सा है? मैं भी तो उनके साथ-ही-साथ मरूँगी। उनके लिये

स्वर्गका द्वार खुला है, तो क्या मेरे लिये बन्द है ?"

ब्रह्मचारीने कहा—"मैं आजतक किसीसे हारा नहीं था। आज पहले-पहल तुमसे हारा। माँ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। सन्तानपर दया करो, जीवानन्दको बचाओ, अपनी प्राणरक्षा करो, इसीसे मेरा कार्योद्धार हो जायगा।"

फिर बिजली चमक उठी। शान्तिने कहा—"मेरे स्वामीका धर्म मेरे हाथमें है। उन्हें दूसरा कौन धर्मसे हटा सकता है? इस लोकमें स्त्रीके लिये पति देवता है, परन्तु परलोकमें धर्म ही सबका देवता है। मेरे लिये मेरे पति बड़े हैं, उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है और उससे भी मेरे स्वामीका धर्म बड़ा है। अपना धर्म मैं जिस दिन चाहूँ छोड़ सकती हूँ, पर अपने स्वामीका धर्म मैं कैसे छुड़ा दूँगी? महाराज! आपकी बात मानकर यदि मेरे स्वामी प्राण देनेको तैयार हों तो मैं उन्हें रोकूँगी?"

यह सुन ब्रह्मचारीने लम्बी साँस लेकर कहा—"माँ! इस कठोर व्रतमें बलिदान करना पड़ता है। हम सबको इसपर बलि हो जाना पड़ेगा। मैं मरूँगा; जीवानन्द मरेंगे, भवानन्द मरेंगे; सभी मरेंगे। माँ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम भी मरोगी किन्तु देखो, काम करके मरना अच्छा होता है। बिना काम किये मरना क्या अच्छा होगा? मैं तो केवल जन्मभूमिको ही माँ समझता हूँ और किसीको मैं माँ नहीं कहता; क्योंकि इस सजल सफल धरणीके सिवा हमारी और कोई माता हो ही नहीं सकती। उसके सिवा मैंने आज केवल तुम्हींको माँ कहकर पुकारा है। माँ हो तो सन्तानकी भलाई करो। ऐसा काम करो जिससे कार्योद्धार हो। जीवानन्दके प्राण बचाओ, अपनी भी प्राण-रक्षा करो।"

यह कहकर सत्यानन्द "हरे मुरारे मधुकैटभारे" गाते हुए चले गये।

———

आठवां परिच्छेद

धीरे-धीरे सन्तान-सम्प्रदायवालोंमें यह सवाद फैल गया कि सत्यानन्द लौट आये हैं और उन्होंने सन्तानोंको कुछ आदेश देनेके लिये बुलाया है। सब, सन्तानोंके दलके दल आकर इकट्ठे होने लगे। चांदनी रातमें, नदीकी रेतीली भूमिके पास घने जंगलमें जहाँ आम, कटहल, ताड़, इमली, पीपल, बेल, बड़ और सेमल आदिके हजारों वृक्ष लगे हुए थे, वहीं दस हजार सन्तान आकर जमा हुए। एक दूसरेके मुँहसे सत्यानन्दके आनेकी बात सुनकर ये लोग महा कोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किसलिये कहाँ गये हुए थे, यह सबको नहीं मालूम था। अफवाह थी कि वे सन्तानोंकी मंगल-कामनासे हिमालयपर तपस्या करने गये हुए हैं। आज सभी आपसमें इसकी चर्चा कर रहे हैं कि "मालूम होता है, महाराजकी तपस्या सिद्ध हो गयी। अब राज्य हमारा हो जायगा।"

उस समय बड़ा शोर-गुल मचा। कोई चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—"मारो, मारो इन मुसलमानोंको।" कोई कहने लगा "जय, महाराजकी जय!" कोई "वन्देमातरम्" गीत गाने लगा। कोई कहता-"भाई! क्या कोई ऐसा दिन आवेगा जब हम तुच्छ बङ्गाली भी रण क्षेत्रमें प्राण-त्याग करेंगे?" कोई कहता—"क्या वह दिन देखना भी नसीब होगा कि जब हम मसजिदें गिराकर राधामाधवके मन्दिर उठायेंगे?" कोई कहता—"भाई, कब वह दिन आयेगा, जब हम अपना धन आप ही भोगेंगे?"

दस हजार मनुष्योंके कण्ठसे निकला हुआ कलरव, मन्द-मन्द हवाके वेगसे चलायमान वृक्षके पत्तोंके मरमर शब्द, बालुकामयी तरङ्गिणीका मृदु कल-कल शब्द, नीले आसमानके चन्द्र, तारे, स्वच्छ

मेघोंके समूह, हरी-भरी भूमिपर हरा-भरा कानन, नदीका स्वच्छ जल, उजले रंगकी रेत, विकसित कुसुम-राशि और सबके चित्तको प्रसन्न करनेवाला बीच-बीचमें होनेवाला "वन्देमातरम्" गान क्या ही मनोहर दृश्य था।

ऐसे ही समय सत्यानन्द उस सन्तान मण्डलीके बीचमें आ खड़े हुए। उस समय दस हजार सन्तानोंके मस्तक वृक्षोंके बीचसे छन-छनकर आनेवाली चन्द्रकिरणोंके पड़नेसे हरी-हरी घासोंवाली जमीनकी तरह मालूम पड़ने लगे। आँखोंमें आँसू भरे दोनों हाथ ऊपर उठाये सत्यानन्दने बड़े ऊँचे स्वरसे कहा—"शंख-चक्र गदा-पद्मधारी, वनमाली, वैकुण्ठनाथ, केशीसंहारक, मधुमुर-नरक-मर्दन, लोकपालक तुम्हारा मंगल करें। वे ही तुम्हारी भुजाओंमें बल, मनमें शक्ति, धर्ममें मति दें। एक बार सब लोग प्रेमसे उनकी महिमाका गीत गाओ।" यह सुनते ही हजारों कण्ठोंसे उच्च स्वरमें यह संगीत निकल पड़ा—

"जय जगदीश हरे!
प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदं,
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्,
केशव-धृत मीन-शरीरं,
जय जगदीश हरे!"

फिर सबको आशीर्वाद देते हुए सत्यानन्दने कहा—"संतानगण! आज मैं तुम लोगोंसे एक जरूरी बात कहना चाहता हूँ। टामस नामक एक विधर्मी दुष्टने बहुतसे सन्तानोंको मार डाला है। आज रातको तुम सब उसे सैन्य समेत मारकर ढेर कर दो। जगदीश्वरकी यही आज्ञा है, बोलो, तुम सब क्या कहते हो?"

भीषण जयध्वनिसे सारा जंगल गूँज उठा—"अभी मारकर ढेर कर देंगे। चलिये बतलाइये, वे सब कहाँ हैं? मारो, मारो, अभी दुश्मनोंको मार गिराओ।" इत्यादि शब्द दूरके पर्वतोंमें प्रतिध्वनित होने लगे।

तब सत्यानन्दने कहा—"इसके लिये हमलोगोंको थोड़ा धैर्य रखना होगा। शत्रुओंके पास तोपें हैं। जबतक अपने पास भी तोपें न हों, तबतक उनसे युद्ध नहीं किया जा सकता। विशेषतया वे सब वीर-जातिके हैं। पदचिन्हसे १७ तोपें आ रही हैं। उनके आ जानेपर हमलोग युद्धयात्रा करेंगे। यह देखो, सवेरा हो रहा है। चार घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते—अरे, वह क्या ?"—धांय धांय धांय।

अकस्मात् उस जंगलमें चारों ओरसे तोप छूटनेकी आवाजें आने लगीं। तोपें अगरेजोंकी थीं। जालमें फँसी हुई मछलियोंकी तरह कप्तान टामसने सन्तान-सम्प्रदायको उस जंगलमें घेरकर मार डालनेका विचार किया था।

—:०❀०:—

नवां परिच्छेद

अंगरेजोंकी तोपें "धांय-धांय" करके गरज उठीं। वह शब्द उस विशाल काननको कँपाता हुआ गूँज उठा, नदीके किनारे-किनारे चलकर वह धाँय-धाँय शब्द दूरस्थ आकाश-प्रान्तसे टकरा उठा। नदीके उस पार दूरस्थ काननमें प्रवेशकर वही ध्वनि फिर "धाँय-धाँय" कर उठी।

सत्यानन्दने कहा—"तुम लोग जाकर देखो, कि ये किसकी तोपें छूट रही हैं।" यह सुन कई व्यक्ति घोड़ेपर सवार हो अनुसंधान करने चले; पर ये जंगलसे बाहर निकल कुछ ही दूर गये होंगे कि उनपर सावनकी धाराकी तरह गोले बरसने लगे। बस बस-के सब घोड़े समेत वहीं ढेर हो गये।

सत्यानन्दने दूर हीसे यह दृश्य देखा। उन्होंने कहा—"वृक्षकी ऊँची डालपर चढ़कर देखना चाहिये कि क्या बात है।"

उनके कहनेके पहलेसे ही जीवानन्द वृक्षपर चढ़कर सवेरेकी सूर्य-

किरणोंका आनन्द ले रहे थे। वे ऊपर हीसे चिल्लाकर बोले—"तोपें अंगरेजोंकी हैं।

सत्यानन्दने पूछा—"सब पैदल हैं या घुड़सवार?"

जीवा०—"दोनों ही!"

सत्या०—"कितने हैं?"

जीवा०—"मैं कुछ अनुमान नहीं कर सकता। अभीतक वे लोग धीरे-धीरे जंगलकी आड़से निकलते ही जाते हैं।"

सत्या०—"गोरे भी हैं या सब देशी ही सिपाही हैं।"

जीवा०—"गोरे भी हैं।"

तब सत्यानन्दने जीवानन्दसे कहा—"अच्छा, तुम नीचे उतरो।" जीवानन्द पेड़से नीचे उतर पड़े।

सत्यानन्दने कहा—"इस समय दस हजार सन्तान यहाँ उपस्थित हैं। अब इनकी सहायतासे तुम जो कुछ कर सको, कर दिखाओ। आजके लिये मैंने तुम्हें ही सेनापति बनाया।"

जीवानन्द हथियार बाँधे लपककर घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने एक बार आँखोंके इशारेसे नवीनानन्द गोस्वामीसे न जाने कौन-सी बात कही, कोई इस इशारेको न समझ सका। नवीनानन्दने भी इशारे से ही उसका जवाब दिया, पर इस इशारेको भी कोई न समझ सका। केवल उन्हीं दोनों आदमियोंने अपने मन ही-मन समझ लिया कि यही देखा-देखी शायद अन्तिम है, अब फिर इस जीवनमें देखा-देखी न होगी। नवीनानन्दने अपनी दाहिनी भुजा उठाये हुए सबसे कहा—"भाइयो! बस, अब इस समय केवल 'जय जगदीश हरे' गाओ। फिर क्या था? एक साथ ही दस हजार सन्तान सुर-में-सुर मिलाये; नदी कानन और आकाशको प्रतिध्वनित करते; तोपोंकी आवाजको डुबाते हुए हजारों भुजाएँ ऊपर उठाये, गाने लगे—

"जय जगदीश हरे!
म्लेच्छ निवहनिधने कलयसि करवालम्।"

इसी समय अंगरेजोंकी तोपोंसे छूट-छूटकर गोले उस जंगलमें जमा हुए सन्तानोंपर पड़ने लगे। किसीका सिर उड़ गया, किसीकी बांह कट गयी, किसीका कलेजा छिद गया, लोग धरती चूमने लगे पर तो भी किसीने गाना बन्द नहीं किया। सभी "जय जगदीश हरे' गाते रहे। गीत समाप्त होनेपर सब एक साथ चुप हो गये। वह घनघोर जंगल; वह नदीकी रेत; वह अनत निर्जन स्थान एक बारगी निस्तब्ध हो गया; केवल वही तोपोंकी अत्यन्त भयानक गर्जन और दूरसे सुनायी पड़नेवाली गोरोंके हथियारोंकी झनझनाहट और पैरोंकी आहट सुनायी देती थी।

तब सत्यानन्दने उस गहरे सन्नाटेको तोड़ते हुए ऊँचे स्वरमें कहा—"जगतके स्वामी हरिने तुमलोगोंपर कृपा की, बोलो, तोपें कितनी दूरपर हैं?"

ऊपरसे किसीने कहा—"इस जंगलके बहुत ही पास, एक छोटेसे जंगलके उस पार।"

सत्यानन्दने पूछा—"तुम कौन हो?"

ऊपरसे जवाब मिला—"मैं हूँ नवीनानन्द।" तब सत्यानन्दने कहा—"तुम लोग दस हजार सन्तान हो। तुम्हारी जय आज अवश्य होगी। बस जाओ, जाकर उनकी तोपें छीन लो।"

यह सुन, सबसे आगे घोड़ेपर सवार जीवानन्दने कहा—"चलो आओ।"

बस वे दसों हजार सन्तान, कोइ पैदल कोई घोड़ेपर सवार हो जीवानन्दके पीछे-पीछे चले। पैदल चलनेवालोंके कन्धोंपर बन्दूक, कमरमें तलवार और हाथमें भाला था। जंगलसे बाहर निकलते ही लगातार उनपर गोले बरसने लगे, जिससे वे छिन्न-भिन्न होने लगे। अनेक

सन्तान तो बिना लड़े-भिड़े मारे गये। एकने जीवानन्दसे कहा—"जीवानन्द! व्यर्थ इतने आदमियोंकी जानें लेनेसे क्या लाभ है?"

जीवानन्दने घूमकर देखा कि भवानन्द हैं। जीवानन्दने कहा—"तुम्हीं कहो, मैं क्या करूँ?"

भवा०—"जंगलके भीतर पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर हम अपनी जान भी बचा सकते हैं और बहुत देर तक युद्ध भी कर सकते हैं। नहीं तो सरपट मैदानमें बिना तोपके ये सन्तान तोपोंके सामने घड़ी भर भी न ठहर सकेंगे।

जीवा०—"तुम्हारा, कहना ठीक है, पर प्रभुकी आज्ञा है कि तोप छीन लो। इसलिये हमलोग तोपें छीननेके लिये अवश्य आगे बढ़ेंगे।"

भवा०—"भला किसकी सामर्थ्य है, जो उनसे तोपें छीन लेगा? खैर! यदि जाना ही है तो तुम चुपचाप बैठो। मैं ही जाता हूँ।"

जीवा०—"नहीं भवानन्द! यह नहीं होनेका। आज मेरे मरने का दिन है।"

भवा०—"नहीं, आज मेरे मरनेका दिन है।"

जीवा०—"मुझे तो प्रायश्चित करना है।"

भवा०—"नहीं, नहीं, तुम्हें तो पाप छू भी नहीं गया, तुम्हारा प्रायश्चित कैसा? मेरा चित्त कलुषित है। मुझे ही मरने दो। तुम रहो, मैं जाता हूँ।"

जीवा०—"भवानन्द! तुमने क्या पाप किया है, यह तो मैं नहीं जानता, पर हाँ, इतना जानता हूँ कि तुम्हारे जीते रहनेसे संतानों-का कार्य सिद्ध हो जायगा। मैं चलता हूँ।"

भवानन्द कुछ देर चुप रहे। अन्तमें बोले—"यदि मरनेका प्रयोजन होगा तो आज मैं ही मरूँगा, नहीं तो जिस दिन प्रयोजन होगा उसी दिन मरूँगा। मृत्युके लिये समय-कुसमयका विचार कैसा?"

जीवा०—"तब आओ, चले आओ।"

इसके बाद भवानन्द उसके आगे चले आये। इस समय ढेरके ढेर गोले पड़कर सन्तानोंके सैन्यका संहार कर रहे थे। इससे लोग भागने लगे, कहीं औंधे-सीधे गिरने लगे, कहीं शत्रुओंके बन्दूकधारी सिपाहियोंने अपने अचूक निशानेसे ढेरके ढेर सतानोंको मार कर जमीनमें गिरा दिया। इसी समय भवानन्दने कहा—"अब सन्तानोंको इस तरंगमें कूदना ही पड़ेगा। बोलो, भाइयो! कौन कौन कूदनेको तैयार है?" गाओ, "बन्देमातरम्।" उस समय ऊंचे कण्ठसे मेघ-मल्लार रागमें सारे सन्तान तोपोंकी आवाजके तालपर "बन्देमातरम्" गान गाने लगे।

दसवां परिच्छेद

वे दसों हजार सन्तान बन्देमातरम् गान गाते, भाले ऊपर उठाये हुए बड़ी तेजीके साथ तोपोंके मोहड़ेकी ओर चल पड़े। लगातार गोले बरसनेसे सन्तान-सेना खंड-खंड, विदीर्ण और अत्यन्त विश्रृंखल हो गयी, तो भी लौटी नहीं। उसी समय कप्तान टामसकी आज्ञाके अनुसार सिपाहियोंका एक दल बन्दूकोंपर सगीनें चढ़ाये सन्तानोंकी दाहिनी ओरसे आकर उनपर टूट पड़ा। दोनों तरफसे हमला हो जाने-के कारण सन्तानगण एकबारगी निराश हो गये। क्षण-क्षणमें सैकड़ों सन्तान नष्ट होने लगे। तब जीवानन्दने कहा—"भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब बेचारे वैष्णवोंकी हार करवाना व्यर्थ है। चलो हमलोग धीरे-धीरे लौट चलें।"

भवा०—"अब कैसे लौट चलोगे? इस समय तो जो पीछे फिरेगा वही जान गँवायेगा।"

जीवा०—"सामने और दाहिनी तरफसे हमला हो रहा है। बाईं तरफ कोई नहीं है। चलो धीरे-धीरे घूमकर बायीं तरफ हो जायँ और उधर होसे निकल भागें।"

भवा०—"भागकर कहाँ जाओगे ? उधर नदी है। वर्षाके कारण बहुत उमड़ी हुई है। अंगरेजोंके गोलेके डरसे भागकर तो सन्तानसेना नदीमें डूब जायगी।"

जीवानन्द—"मुझे याद आता है कि उस नदीपर पुल बँधा है।"

भवा०—"यदि उस पुलपरसे यह दस हजार सन्तान सेना नदी पार करने लगी, तो बड़ी भीड़ हो जायगी। शायद एक ही तोपमें सारी सेना सहजमें ही विध्वंस कर दी जायगी।"

जीवा०—"एक काम करो। थोड़ी सी सेना तुम अपने साथ रख लो। इस युद्धमें तुमने जैसी हिम्मत और चतुराई दिखलाई है उससे मुझे मालूम हो गया कि ऐसा कोई काम नहीं, जो तुम न कर सको। तुम उन्हीं थोड़ेसे सन्तानोंके साथ सामनेसे हमला रोको। मैं तुम्हारी सेनाकी आड़में बाकी सन्तानोंको पुल पार करा ले जाऊँगा। तुम्हारे साथके सैनिक तो जरूर ही मरेंगे, पर मेरे साथवाले अगर बच जायँ तो कोई ताज्जुब नहीं।"

भवा०—"अच्छा, मैं ऐसा ही करता हूँ।"

बस, भवानन्दने दो हजार सन्तानोंके साथ एक बार फिर 'बन्देमातरम्' की गगनभेदी ध्वनि करते हुए बड़े उत्साहके साथ अंग्रेजों-के तोपखानेपर हमला किया। घोर युद्ध छिड़ गया, पर तोपके सामने वह छोटी-सी सन्तानसेना कबतक ठहरती ? जैसे किसान पके हुए धानके पौधोंको काट-काटकर बिछाता चला जाता है वैसे ही अंग्रेजोंकी गोलन्दाज सेना उन्हें मार-मारकर गिराती चली गयी।

इसी बीच जीवानन्द बाकी सन्तान-सैन्यका मुँह थोड़ा फेरकर बायीं ओरके जङ्गलकी ओर धीरे-धीरे चले। कप्तान टामसके एक सहकारी लेफ्टनेंट वाटसनने दूरसे ही देखा, कि सन्तानोंका एक दल धीरे धीरे भागा जा रहा है। यह देख, वे कुछ फौजी और कुछ मामूली सिपाहियोंके साथ जीवानन्दके पीछे दौड़े।

कप्तान टामसने भी यह देख लिया। यह देखकर कि संतानोंका प्रधान भागा जा रहा है, उन्होंने कप्तान 'हे' नामक अपने एक सहकारीसे कहा—"मैं जबतक दो-चार सौ सिपाहियोंको लेकर इन सामनेके छिन्न-भिन्न विद्रोहियोंको नष्ट करनेमें लगा हूँ तबतक तुम तोपों और बाकी सिपाहियोंको साथ लेकर उन भागनेवालोंका पोछा करो। बायीं ओरसे लेफ्टनट वाटसन जा ही रहा है दाहिनी ओरसे तुम भी जा पहुँचो। देखो, आगे बढ़कर तुम्हें पुलका मुँह बन्द कर देना होगा, जिससे वे लोग तीन ओरसे घिर जायं और जालमें फंसी हुई चिड़ियोंकी तरह मारे जा सकें। वे सब बड़े तेज चलनेवाले देशी सिपाही है, भागनेमें बड़े होशियार होते हैं, इसलिये तुम उन्हें सहजमें ही न पकड़ सकोगे। घूमघुमाव रास्तेसे घुड़सवारोंको पुलके मुहानेपर ले जाकर खड़ा कर दो। बस, फतह हो जायगी।" कप्तान 'हे' ने ऐसा ही किया।

"अति दर्पे हता लंका।" कप्तान टामसने सन्तानोंका अत्यन्त तुच्छ समझकर केवल दो सौ पैदल सिपाही भवानन्दसे लड़नेके लिये रखे और बाकी सबको 'हे' के साथ रवाना कर दिया। चतुर भवानंदने देखा कि अगरेजोंकी तोपें हट गयीं और प्रायः सब सैनिक भी चले गये, अब थोड़े-बहुत रह गये हैं उन्हें हम सहज ही मार डालेंगे। बस, उन्होंने अपने बचे-खुचे सिपाहियोंको पुकारकर कहा—"देखो, ये जो थोड़े से दुश्मनके सिपाही बचे हैं, उन्हें मारकर ढेर कर दो, तो मैं जीवानन्दकी सहायताको चल पड़ूं।" बोलो, एक बार प्रेमसे बोलो—"जय जगदीश हरे!" यह सुनते ही वह थोड़ी-सी सन्तान-सेना 'जय जगदीश' का शोर मचाती हुई कप्तान टामसके ऊपर भूखे बाघकी तरह टूट पड़ी; उस आक्रमणकी उग्रता वे थोड़े से सिपाही और तिलंगे न सह सके, सबके-सब नष्ट हो गये। भवानन्दने स्वयं आगे बढ़कर कप्तान टामसके सिरके बाल पकड़ लिये। कप्तान अन्ततक प्राणपणसे लड़ता रहा। भवानन्दने कहा—"कप्तान साहब! मैं तुम्हें नहीं

मारूँगा, क्योंकि अंगरेजोंसे हमारी कोई शत्रुता नहीं है। तुम भला इन मुसलमानोंकी सहायता करनेके लिये क्यों आये हो? जाओ, मैं तुम्हें प्राणदान देता हूँ, पर इस समय तो तुम हमारे बन्दी होकर रहोगे। भगवान अंगरेजोंका भला करें, हमलोग तुम्हारे दोस्त ही हैं, दुश्मन नहीं।"

यह सुन कप्तान टामसने भवानन्दको मारनेके लिये अपनी खुली संगीन उठानी चाही, पर भवानन्द उसे ऐसा शेरकी तरह अपने पंजेमें पकड़ रखा था कि वह सिर भी न हिला सका। भवानन्दने अपने साथियोंसे कहा—"इसे बाँध लो।" बस, दो तीन सन्तानोंने आगे बढ़कर कप्तान टामसको बाँध डाला। भवानन्दने कहा—"इसे एक घोड़ेपर लाद लो और इसको साथ लिये हुए जीवानन्दकी सहायताको चलो।"

तब उन अल्पसंख्यक सन्तानोंने कप्तान टामसको एक घोड़ेकी पीठपर लाद और "बन्देमातरम्" गीत गाते हुए बाटसनकी खोजमें चल पड़े।

उधर जीवानन्दकी सेनाके दिल टूट रहे थे और वह भागनेका मार्ग ढूँढ़ रही थी। जीवानन्दने उन्हें समझा-बुझाकर रोक रखना चाहा पर सबको भागनेसे न रोक सके। कितने ही भागकर आमके बगीचेमें जा छिपे। बाकी लोगोंको जीवानन्द और धीरानन्द पुलकी ओर ले गये। पर वहाँ पहुँचते ही 'हे' और बाटसनने उन्हें दो तरफसे घेर लिया। अब जान कहां बचती है?

ग्यारहवां परिच्छेद

इसी समय टामसकी तोपें दाहिनी ओरसे आ पहुँची। तब तो सन्तानोंकी सेना एक बार ही तितर-बितर हो गयी। किसीके बचनेकी कोई आशा न रही। संतानोंमेंसे जिसका जिधर सींग समाया, वह उधर

ही भाग निकला। जीवानन्द और धीरानन्दने उन्हें रोक रखनेके लिये बड़े-बड़े यत्न किये, पर न रोक सके। इसी समय बड़े ऊँचे स्वरसे आवाज आयी—"पुलपर चले जाओ, पुलपर चले जाओ, बस पार पहुँच जाओ नहीं तो नदीमें डूब मरोगे। अंगरेजी सेनाकी ओर मुँह किये हुए धीरे-धीरे पुलपर पहुँच जाओ।"

जीवानन्दने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, तो सामने भवानन्द नजर आये। भवानन्दने कहा—"जीवानन्द सबको पुलपर ले जाओ, नहीं तो रक्षा नहीं है।"

तब धीरे-धीरे पीछेकी ओर हटती हुई सन्तान-सेना पुल पार करने चली, पर ज्योंही वे पुलपर पहुँचे, अंगरेजोंने मौका पाकर तोपसे पुलको उड़ा देना शुरू किया। सन्तानोंका पुल नष्ट होने लगा। भवानन्द, जीवानन्द और धीरानन्द तीनों एकत्र हो गये, एक-एक तोपकी मारसे बहुत सन्तानोंका संहार हो रहा था। भवानन्दने कहा—"जीवानन्द, धीरानन्द आओ, तलवारें घुमाते हुए हमलोग उस तोपको चलकर छीन लें।"

यह कह तीनों व्यक्ति तलवारें चमकाते हुए उस तोपके पास पहुँचे और गोलन्दाज सिपाहियोंको मार-मारकर ढेर करने लगे। अन्य सन्तानगण भी उनकी मददको आ पहुँचे। तोप भवानन्दके हाथोंमें चली आयी। तोप कब्जेमें कर, भवानन्द उसके ऊपर चढ़ गये और ताली बजाते हुए बोले—"वन्देमातरम्" सब के-सब 'वन्देमातरम्' गाने लगे। भवानन्दने कहा—"इस तोपको घुमाकर अब इन सबोंकी खबर लेनी चाहिये।"

यह सुनते ही सन्तानोंने तोपका मुँह फेर दिया। फिर तो वह तोप उच्च नाद करती हुई वैष्णवोंके कानोंमें हरिनाम गुञ्जाने लगी। उसकी बाढ़के सामने सिपाही ढेर होने लगे। भवानन्द उस तोपको खींच-खींचकर पुलके मुँह पर ले आये और बोले—"तुम दोनों

कतारबन्दी करके संतान-सेनाको पुलके उस पार ले जाओ, मैं अकेला ही इस व्यूह-द्वारकी रक्षा करूँगा। तोप चलानेके लिये मेरे पास थोड़ेसे गोलन्दाज सिपाही छोड़ जाओ।"

बीस चुने हुए जवान भवानन्दके पास रह गये और असंख्य संतान-सेना पुल पारकर जीवानन्दकी आज्ञानुसार कतार बाँध आगे बढ़ी। अकेले भवानन्द उन बीस जवानों की सहायतासे, एक ही तोपसे बहुत सिपाहियोंको जहन्नुमकी राह दिखलाने लगे। पर यवन-सेना भी ज्वारके समय लगातार उठती हुई तरंगोंके समान ही बढ़ती गयी और भवानंदको चारों ओरसे घेरकर हैरान करने लगी। वे उन तरङ्गोंमें पड़कर डूबने लगे। पर भवानन्द न तो थकनेवाले ही थे, न हारनेवाले—वे बड़े ही निडर थे। वे भी तोप दाग-दागकर कितनेही सैनिकोंका नष्ट करते चले गये। यवनगण आँधीसे उठती हुई तरंगोंकी तरह उनपर हमला करने लगे, पर वे बीसों जवान पुलका मोहड़ा रोके ही रहे। बारपर-बार होनेपर भी वे न हटे और यवन पुलपर न पहुँच सके। वे वीर मानों अजेय थे। उनका जीवन मानों अमर था। इस अवसरमें दल के दल संतान उसपर पहुँच गये। थोड़ी देरमें सारी संतान सेना पुल पारकर जाती; पर इसी समय न जाने किधरसे नयी-नयी तोपें गरज उठीं। अररररर धायँकी आवाज होने लगी। दोनों ही दल थोड़ी देर हाथ रोककर देखने लगे, कि ये तोपें कहाँसे दागी जा रही हैं। उन्होंने देखा कि जङ्गलके भीतरसे कितने ही देशी सिपाही तोपें दागते हुए चले आ रहे हैं। जंगलसे निकलकर सत्रह बड़ी-बड़ी तोपें एक साथ ही 'टे' साहबके दलपर आग बरसाने लगीं। घोर शब्दसे जगल और पहाड़ गूँज उठे। सारा दिन लड़ते-लड़ते थकी हुई यवनसेना प्राणोंके भयसे काँप उठी। उस अग्निवर्षाके आगे तिलंगे, मुसलमान और हिन्दुस्तानी सिपाही सभी भागने लगे। केवल दो-चार गोरे खड़े-खड़े जूझ रहे थे।

भवानन्द तमाशा देख रहे थे। उन्होंने कहा—"भाइयो! देखो; वे चोटींकाटे भाग जा रहे हैं। चलो, एकबार ही उनपर टूट पड़ो।" तब चींटियोंके दलकी तरह कतार बाँधे सन्तान-सेना नये उत्साहसे पुलके इस पार आकर यवनोंपर आक्रमण करने लगी। वह अकस्मात् यवनोंपर टूट पड़ी। उन बेचारोंको युद्ध करनेका मौका ही न मिला। जैसे गंगाकी तरंगें पर्वताकार मतवाले हाथीको बहा ले जाती हैं; वैसे ही सन्तानगण यवनोंको बहा ले चले। मुसलमानोंने देखा कि पीछे तो भवानन्दकी पैदल सेना है और सामने महेंद्रकी बड़ी-बड़ी तोपें गरज रही हैं।

अब तो 'हे' साहबने देखा कि सर्वनाश उपस्थित है। उनकी सारी सुध-बुध जाती रही—बल, वीर्य, साहस, कौशल, शिक्षा; अभिमान—सबका दिवाला निकल गया। सारी फौजदारी, बादशाही; अँगरेजी; देशी, विलायती, काली और गोरी सेना गिर-गिरकर जमीन चूमने लगी। विधर्मियोंका दल भाग चला। जीवानन्द और धीरानन्द 'मार मार' करते हुए विधर्मी सेनाके पीछे दौड़ पड़े। सन्तानोंने उनकी कुल तोपें छीन लीं। बहुतसे अँगरेज और देशी सिपाही मारे गये। सर्वनाश समीप आया देख कप्तान 'हे' और वाटसनने भवानन्दके पास कहला भेजा—"हम सब तुम्हारे कैदी हैं, अब हमारी जानें छोड़ दो।" जीवानन्दने भवानन्दके मुँहकी ओर देखा। भवानन्दने मन-ही-मन कहा—नहीं; यह तो नहीं होगा। आज तो मैं मरनेके लिये तैयार हूं। यह सोचकर भवानन्द ऊपरको हाथ उठाये हरिहरि कहते हुए बोले—"मारो, मारो इन दुष्टोंको।"

अब तो एक भी प्राणी जीता न बचा। केवल २०-३० गोरे सिपाही एक जगह इकट्ठे होकर मन-ही-मन आत्मसमर्पण करनेका निश्चय कर जानपर खेलकर लड़ रहे थे। जीवानन्दने कहा—"भवानन्द! हमारी तो जय हो चुकी अब लड़नेका कोई काम नहीं है।

इन दो-चार व्यक्तियोंको छोड़कर और कोई जीता नहीं रहा। इनको प्राणदान दे दो और घर लौट चलो।"

भवानन्दने कहा—"एकको भी जीता छोड़कर भवानन्द नहीं लौट सकता। जीवानन्द ! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, तुम अलग हटकर खड़े हो जाओ और तमाशा देखो मैं अकेला ही इन अंगरेजों-को मार गिराता हूँ।"

कप्तान टामस घोड़ेकी पीठपर बँधा था। भवानन्दने हुक्म दिया—उसे मेरे सामने ले आओ। पहले उसकी जान लूँगा, फिर मैं तो मरूँगा ही।"

कप्तान टामस बँगला अच्छी तरह जानता था। उसने यह बात सुन ललकारकर उन अङ्गरेज सिपाहियोंसे कहा—"भाई अंगरेजो ! मैं तो मरता ही हूँ, पर तुमलोग इङ्गलैण्डके प्राचीन यशकी रक्षा करना। मैं तुम्हें ईसामसीहकी सौगन्ध देकर कहता हूँ कि पहले मुझे मारकर तब विद्रोहियोंको मारना।"

इसी समय धायँसे पिस्तौल छूटी। एक आयरिशने कप्तान टामसको लक्ष्य कर यह गोली छोड़ी थी। गोली कप्तान टामसके सिरमें लगी। उसके प्राण निकल गये। भवानन्दने जोरसे चिल्लाकर कहा—"मेरा ब्रह्मास्त्र व्यर्थ चला गया। अब कौन ऐसा अर्जुन, भीम, नकुल या सहदेव है जो इस समय मेरी रक्षा कर सके ? यह देखो, चुटीले शेरकी तरह सब गोरे मेरे ऊपर टूट रहे हैं। मैं तो मरनेके लिए आया ही हूँ। अब बतलाओ, कौन-कौन सन्तान मेरे साथ मरना चाहते हैं।"

सबसे पहले धीरानन्द आगे आये, इसके बाद जीवानन्द। साथ ही दस, फिर पन्द्रह, फिर बीस और अन्तमें पचास सन्तान आकर वहीं इकट्ठे हो गये। भवानन्दने धीरानन्दको देखकर कहा—"तुम भी क्या मेरे ही साथ मरने आये हो ?"

धीरा०—"क्यों मरनेमें भी किसी का इजारा है ?" यह कहते हुए धीरानन्दने एक अंग्रेजको घायल किया।

भवा०—"नहीं, नहीं, मेरे कहनेका मतलब यह है कि तुम तो स्त्री-पुत्रका मुँह देखते हुए सुखसे दिन बिताना चाहते थे।"

धीरा०—"कलवाली बातका इशारा कर रहे हो? क्या अब भी तुम्हारी समझमें कुछ न आया?" यह कहते-कहते धीरानन्दने उस घायल गोरेको मार गिराया।

भवा०—"नहीं—"

बात पूरी भी न होने पायी थी कि एक गोरेने भवानन्दका दाहिना हाथ काट डाला।

धीरा०—"मेरी क्या मजाल, जो मैं तुम्हारे जैसे पवित्रात्मासे वैसी बातें कहता? मैं तो उस समय सत्यानन्दका जासूस बनकर गया हुआ था।"

भवा०—"यह क्या? क्या महाराज मेरे ऊपर सन्देह करते हैं?"

उस समय भवानन्द एक ही हाथसे लड़ रहे थे। धीरानन्दने उनकी रक्षा करते हुए कहा—"कल्याणीके साथ तुम्हारी जो जो बातें हुई थीं, वे सब महाराजने अपने कानों सुन ली थीं।"

भवा०—"सो कैसे?"

धीरा०—"वे स्वयं वहाँ गये थे। देखो सावधान हो जाओ!" इसी समय एक गोरेने भवानन्दपर हमला किया, जिसका जवाब उन्होंने हमलेसे दिया।

धीरानन्द कहते गये—"वे कल्याणीको गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम वहाँ पहुँचे। देखो सावधान!" भवानन्दकी बायीं भुजा भी कटकर गिर पड़ी।

भवा०—"अच्छा, उनको मेरे मरनेका हाल सुनाते हुए कह देना कि मैं अविश्वासी नहीं हूँ।"

आँखोंमें आँसू भरकर धीरानन्द युद्ध करते-करते बोले—"सो तो वे ही समझें। कल उन्होंने जो आशीर्वाद किया था उसे याद करो। उन्होंने मुझसे कह रखा था कि आज भवानन्द मरेगा तुम उसके पास

ही रहना और मरते समय कह देना कि मेरे आशीर्वादसे उसे मरनेके बाद बैकुण्ठवास होगा।"

भवानन्दने कहा—"सन्तानोंकी जय हो। भाई मरते समय एक बार 'वन्देमातरम्' गान तो मुझे सुना दो।

उसी समय धीरानन्दकी आज्ञानुसार सभी युद्धोन्मत्त सन्तान ललकारके साथ 'वन्देमातरम्' गाने लगे। इससे उनकी भुजाओंमें दुगुना बल आ गया। उस भयङ्कर मुहूर्तमें ही बाकी बचे हुए गोरे भी मारे गये। सारी युद्धभूमिपर सन्नाटा छा गया।

उसी मुहूर्त्तमें भवानन्दने भी मुँहसे 'वन्देमातरम्' गाते और मन-ही-मन विष्णु भगवानके चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए परलोककी यात्रा की।

हाय रे रमणी-रूप लावण्य! इस संसारमें सबसे बढ़कर तुझे ही धिक्कार है!

बारहवां परिच्छेद

लड़ाई जीतनेके बाद सारे विजयी वीर अजय नदीके किनारे चारों ओर से सत्यानन्दको घेरे हुए, तरह तरहकी खुशियाँ मनाने लगे केवल सत्यानन्दको ही सुख नहीं था। वे भवानन्दके लिए दुःखी हो रहे थे।

अबतक तो वैष्णवोंके पास लड़ाईके अधिक बाजे नहीं थे, पर इस समय न जाने कहांसे हजारों ढोल, दमामे, शहनाई, भेरी, तुरही, सिंघे आदि बाजे आ पहुँचे। जयसूचक वाक्योंकी ध्वनिसे सभी जङ्गल, नदियाँ और पहाड़ गूँज उठे। इस प्रकार बड़ी देरतक सन्तानोंने तरह-तरहसे खुशियाँ मनायीं। इसके बाद सत्यानन्दने कहा—"आज जगदीश्वरने बड़ी कृपा की जो सन्तानधर्मकी जय हुई, परन्तु अभी एक काम बाकी रह गया है। जो हमारे साथ खुशियाँ न मना सके और हमें यह खुशीका दिन दिखलानेके लिए जानोंपर खेल गये, उन्हें भूल जानेसे काम नहीं चलेगा। जिन्होंने रणक्षेत्रमें प्राण गँवाये हैं, चलो, अब हम उन लोगोंका शव-संस्कार करें। विशेषकर; जिस महात्माने,

हमें इस लड़ाईमें जिताकर अपने प्राण दे दिये हैं, अब भवानन्दका संस्कार खूब धूमधामसे करें।"

यह सुनते ही सन्तानोंका दल 'वन्देमातरम्' कहता हुआ मरे हुए वीरोंका संस्कार करने चला। सब लोग हरिनाम लेते हुए बहुत-सी चन्दनकी लकड़ियाँ बटोर लाये और भवानन्दकी चिता रच उसीपर उन्हें सुला, आग लगाकर चारों ओरसे चिताको घेरे हुए, 'हरे मुरारे' गाने लगे। ये लोग विष्णुभक्त थे—वैष्णव-सम्प्रदाय—भक्त न थे इसीलिए इनमें दाह कर्म होता था।

उसके बाद जंगलमें केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द ही रह गये। पाँचों व्यक्ति एकान्तमें बैठे सलाह करने लगे।

सत्यानन्दने कहा—"इतने दिनोंतक हमलोग जिस व्रतके लिए अपना सब कर्म-धर्म और सुख-आराम छोड़ बैठे थे वह पूरा हो गया। अब यहाँ यवनसेनाका नाम-निशान भी न रहा, जो बाकी बचे हैं वे एक क्षण भी हमारे सामने न ठहर सकेंगे। अब तुम लोगोंकी क्या राय है?"

जीवानन्दने कहा—"अब यहांसे चलकर हमें राजधानीपर अधिकार जमाना चाहिये?"

सत्या०—"मेरी भी यही राय है।"

धीरा०"पर आपके सिपाही कहाँ हैं?"

जीवा०—"क्यों? यहीं तो हैं।"

धीरा०—"कहाँ हैं? कोई नजर भी आता है!"

जीवा०—"सब लोग जहाँ-तहाँ विश्राम कर रहे हैं। डङ्का बजाते ही सब इकट्ठे हो जायंगे?"

धीरा०—"एकका भी पता नहीं लगेगा।"

सत्या०—"क्यों?"

धीरा०—"सब लूटपाट करने चले गये हैं। इस समय गाँवोंकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। मुसलमानोंके गाँवों और रेशमकी कोठियों-

को लूटपाट कर सबके सब चले जायंगे। इस समय आप किसीको नहीं पायेंगे। मैं खोज ढूँढ़कर बैठा हूँ।"

सत्यानन्द उदास होकर बोले—"जो हो, अब तो सारा प्रदेश हमारी मुट्ठीमें आ गया। यहाँ और कोई ऐसा नहीं जो हमारे विरुद्ध उठ खड़ा हो, इसलिए तुमलोग वीर-भूमिमें सन्तानराज्यका झण्डा खड़ा करो, प्रजासे कर वसूल करो और नगरपर अधिकार करनेके लिए सेनाका संग्रह करते रहो। हिन्दुओंका राज्य हुआ है, यह सुनते ही बहुतसे सैनिक हमारे झण्डेके नीचे चले आयेंगे।"

तब जीवानन्द आदि सब लोगोंने सत्यानन्दको प्रणामकर कहा—"हम सब आपको प्रणाम करते हैं। महाराजाधिराज! यदि आपकी आज्ञा हो; तो कहिये, हमलोग इसी जंगलमें आपका सिंहासन स्थापित करें।"

सत्यानन्दने जीवनमें आज पहली ही बार क्रोध प्रकाश किया था। बोले—"क्या तुमलोग मुझे भी ढोंगी साधु समझते हो? हमलोग राजा नहीं संन्यासी हैं। इस समय देशके राजा स्वयं भगवान् वैकुण्ठ-नाथ हैं। नगरपर अधिकार हो जानेपर तुमलोग जिसे चाहना उसे राजमुकुट पहना देना, पर यह निश्चय समझ रखो, कि मैं इस ब्रह्म-चर्य्याश्रमको छोड़कर और किसी आश्रमको स्वीकार नहीं कर सकता। जाओ, अपना-अपना काम देखो।"

यह सुन, वे चारों आदमी ब्रह्मचारीको प्रणाम कर उठ खड़े हुए। तब औरोंकी नजर बचाकर सत्यानन्दने महेन्द्रको ठहरनेका इशारा किया। अन्य तीनों व्यक्ति तो चले गये। महेन्द्र रह गये। तब सत्यानन्दने महेन्द्रसे कहा—तुम सबने विष्णुमण्डपमें शपथ करके सन्तानधर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनोंने ही अपनी प्रतिज्ञा भंग कर डाली। भवानन्दने तो अपने कहे मुताबिक अपने पापका प्रायश्चित्त कर डाला, अब मुझे डर है कि कहीं जीवानन्द भी प्रायश्चित्त करनेके लिए अपने प्राण न दे डाले, पर मुझे एक ही बातका भरोसा है,

जिससे वह अभी नहीं मर सकता। वह बात एकदम गुप्त है। अकेले तुमने ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी तरह निवाही है। अब तो सन्तानोंका काम हो गया। प्रतिज्ञा तो उसी दिनतकके लिए थी, जबतक सन्तानों का काम न हो जाता। अब कार्योद्धार हो गया है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम फिरसे गृहस्थ बन जाओ।"

महेन्द्रकी आँखोंसे लगातार आँसू चलने लगे। वे बोले—"महाराज! अब मैं किसको लेकर फिरसे गृहस्थ बनूँ? स्त्रीने प्राण दे ही दिये, कन्याका कुछ पता ही नहीं कि किधर गयी। अब मैं उसे कहांसे ढूँढ़ लाऊँ। आपने कहा था, कि वह जीती है, इसीसे इतना भी जानता हूँ। और कुछ मुझे नहीं मालूम।"

तब सत्यानन्दने नवीनानन्दको बुलाकर महेन्द्रसे कहा—"देखो इनका नाम नवीनानन्द गोस्वामी है। ये बड़े ही पवित्रात्मा हैं और मेरे शिष्य हैं। ये ही तुम्हें तुम्हारी कन्याका पता बता देंगे।" यह कह सत्यानन्दने शान्तिको इशारेसे कुछ कहा। इस इशारेको समझकर शान्ति वहांसे जाने लगी। यह देख महेन्द्रने कहा—"अब तुमसे कहाँ देखा-देखी होगी?"

शान्तिने कहा—"मेरे आश्रममें चलिये।" यह कह, शान्ति आगे-आगे चलीं। महेन्द्र भी ब्रह्मचारीके पैर छू बिदा माँग शान्तिके पीछे-पीछे चलकर उसके आश्रममें पहुँचे। उस समय रात बहुत बीत गयी थी, तो भी शान्ति सोने न जाकर नगरकी ओर चल पड़ी।

सबके चले जानेपर ब्रह्मचारी भूमिमें माथा टेके हुए मन-ही-मन जगदीश्वरका ध्यान करने लगे। क्रमसे सवेरा होनेको आ गया। इसी समय न जाने किसने आकर उनका सिर छूकर कहा—"मैं आ गया!"

ब्रह्मचारी उठ खड़े हुए और चकपकाये हुए बड़ी घबराहटके साथ बोले—"आप आ गये? क्यों? किसलिये?"

आनेवालेने कहा—"दिन पूरे हो गये।"

ब्रह्मचारीने कहा—"प्रभो, आज तो क्षमा कीजिये। आगामी माघी पूर्णिमा के दिन मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।"

आनन्दमठ

चौथा खण्ड

पहला परिच्छेद

उस रातको वह प्रदेश हरिध्वनिसे भर गया। सन्तानोंके दल-के-दल जहाँ-तहाँ ऊँचे स्वरसे 'वन्देमातरम्' या 'जगदीश हरे!' गाते हुए घूमते दिखाई देने लगे। कोई शत्रु-सेनाका अस्त्र, कोई वस्त्र छीनने लगा। कोई मरे हुए शत्रुओंकी लाशोंको पैरसे ठुकराते और तरह-तरहके उपद्रव मचाते थे। कोई गाँवकी तरफ और कोई नगरकी तरफ चले जाते और राही या गृहस्थको पकड़कर कहते—"बोलो वन्दे-मातरम्! नहीं कहोगे, तो हम तुम्हें अभी मारकर फेंक देंगे।" कोई हलवाईकी दूकान लूटकर खा रहा है तो कोई ग्वालेके घर जा सींकेसे दहीकी मटकी उतार दहीमें मुँह लगा रहा है। कोई कहता—"अरे ब्रजके ग्वाले तो आ गये; पर ग्वालिनें कहाँ हैं?" उसी एक रातभरमें गाँव-गाँवमें, नगर-नगरमें घोर कोलाहल मच गया। सबोंने कहा—"मुसलमान हार गये, हिन्दुओंका राज्य पुनः हो गया। अब क्या है? अब सबलोग प्रेमसे एकबार श्रीरामचन्द्रकी जय बोलो।" अब तो गाँववाले मुसलमानोंको देखते ही मारनेको दौड़ने लगे। कोई कोई तो उसी रातको मुसलमानोंकी बस्तीमें घुस उनके घरोंमें आग लगाकर उनकी चीजें लूटने खसोटने लगे। बहुतसे मुसलमान मारे गये, बहुतोंने दाढ़ी मुड़वा, देहमें रामरज पोत, रामका नाम लेना शुरू कर दिया। पूछनेपर झट कह उठते, कि भाई! मैं तो हिन्दू हूँ।

दलके दल डरे हुए मुसलमान नगरकी ओर भाग चले। चारों ओर राज्यके नौकर दौड़-धूप करने लगे। बचे बचाये सिपाही सुसज्जित होकर नगरकी रक्षाके लिए इकट्ठे हुए। राजधानीके किलेकी घाटियों और खाइयोंके दरवाजेपर हथियारबन्द सिपाही बड़ी सावधानीसे पहरा देने लगे। सब लोग रात-रातभर जगे रहते और प्रत्येक क्षण आगंतुक

विपत्तिकी सम्भावनासे काँपते रहते। हिन्दू लोग कहने लगे—"आर, संन्यासी बाबा लोग आयें तो सही—माँ दुर्गा करें, वह दिन शीघ्र देखना नसीब हो।" मुसलमान कहने लगे—"या खुदा! इतने दिनों बाद क्या आज कुरानशरीफ झूठा हो गया? हम पाँच वक्त नमाज पढ़ते हैं तो भी इन माथेमें चन्दन लगानेवाले हिन्दुओंको न हरा सके। दुनियामें किसी बातका भरोसा नहीं है।"

इसी तरह किसीने रोते हुए और किसीसे हँसते हुए वह रात बड़ी घबराहटके साथ बितायी!

यह सब बातें कल्याणीके कानोंमें पड़ी; क्योंकि ये बात तो इस समयतक औरत, मर्द, बच्चे सबके कानोंतक पहुँच चुकी थीं। कल्याणीने मन ही-मन कहा—"जय जगदीश्वर! तुम्हारा कार्य सम्पूर्ण हो गया। अब आज ही मैं अपने स्वामीको देखने जाऊँगी। हे मधु-सूदन! आज तुम मेरे सहायक बनो।"

अधिक रात बीतनेपर कल्याणी शय्या छोड़कर उठी और चुपचाप खिड़की खोलकर देखने लगी। जब उसने कहीं किसीको न देखा तब चुपकेसे धीरे धीरे गौरीदेवीके मकानके बाहर आयी, उसने मन-ही-मन इष्टदेवताको यादकर कहा—"प्रभो ऐसा करना, जिसमें पदचिह्न पहुँच-कर मैं उन्हें देख सकूँ।"

कल्याणी नगरके द्वारके पास आ पहुँची। वहाँ पहरेवालेने पूछा—"कौन जा रही है?" कल्याणीने डरते डरते कहा—"मैं स्त्री हूँ।" पहरेवालेने कहा—"जानेका हुक्म नहीं है।" बात दफादारके कानमें पड़ी, उसने कहा—"बाहर जानेकी मनाही नहीं है, भीतर जानेकी रोक है।" यह सुन पहरवालेने कल्याणीसे कहा—"जाओ माई! चली जाओ, बाहर जानेकी मनाही नहीं है। पर आजकी रात बड़ी आफतकी है। न मालूम माता! रास्तेमें क्या हो जाय। कौन जानें, कहीं तुम्हें डाकुओंके हाथ पड़ जाना पड़े या गड्ढेमें गिरकर प्राण गवाने पड़ें। आजकी रात तो माईजी! तुम कहीं न जाओ।"

कल्याणीने कहा—"बाबा ! मैं भिखारिन हूँ। मेरे पास फूटा कौड़ी भी नहीं, डाकू मुझसे कुछ न बोलेंगे।"

पहरेवालेने कहा—" माँ ! अभी तुम्हारी नयी उमर है। भरी जवानी है। दुनियामें इससे बढ़कर धनदौलत कुछ नहीं है। इसके डाकू तो हम भी हो जा सकते हैं।" कल्याणीने देखा कि यह तो बड़ी विपद आयी। इससे बिना कहे-सुने, चुपचाप वहाँसे दबे पावों खिसक पड़ी। पहरे वालेने देखा कि इसकी माईजीने तो उसकी दिल्लगीका मतलब हीं नहीं समझा। इससे उसके दिलको बड़ी चोट पहुँची। दुःख भुलानेके लिये उसने गाँजेका दम लगाया और राग झिंझोटी खम्माचमें सोरी मियाँका टप्पा गाना शुरू किया। कल्याणी चली गयी।

उस रातको रास्तेमें दल-के-दल पाथक नजर आ रहे थे। कोई 'मारो-मारो' कह रहा था, कोई 'भागो-भागो' के नारे बुलन्द कर रहा था। कोई रो रहा था। कोई हँस रहा था। जो जिसे देख पाता, वह उसको पकड़ने दौड़ता था। कल्याणी बड़े चक्करमें पड़ी। एक तो राह नहीं मालूम, दूसरे किसीसे कुछ पूछने लायक भी नहीं, क्योंकि सभी लड़नेको ही तैयार नजर आते थे। वह लुक-छिपकर अन्धेरेमें रास्ता चलने लगी, पर हजार छिप-छिपकर चलनेपर भी वह एक अत्यन्त उद्धृत विद्रोही दलके हाथमें पड़ ही गयी। वे खूब शोर मचाते हुए उसे पकड़नेको लपके। कल्याणी दम साधे हुए भाग चली और जङ्गल-के भीतर घुस गयी। वहाँतक एक दो डाकुओंने उसका पीछा किया। एकने उसका आँचल पकड़कर कहा—"अब कहो प्यारी!" इसी समय अकस्मात् किसीने पीछेसे आकर उस दुष्टको एक लाठी मारी। वह मार खाकर पीछे हट गया। इस व्यक्तिका वेश संन्यासियोंका सा था। छाती काले मृगकी खालसे छिपी हुई थो—उम्र अभी बिलकुल थोड़ी थी। उसने कहा—"देखो, डरो मत। मेरे साथ-साथ आओ। तुम कहाँ जाओगी ?"

कल्याणी—"मुझे पदचिह्न जाना है।"

आगन्तुक अचरजमें आकर चौंक पड़ा, बोला—"क्या कहा? पदचिह्न?" यह कह, उसने कल्याणीके दोनों कन्धोंपर हाथ रखकर अन्धेरेमें उसका चेहरा देखना शुरू किया।

अकस्मात् पुरुषका स्पर्श होनेसे कल्याणीकी देहके रोंगटे खड़े हो गये। वह डर गयी, शर्मा गयी, अचरजमें पड़ गयी और रोने लगी। वह ऐसी डर गयी, कि उससे भागते भी न बन पड़ा। आगन्तुकने जब अच्छी तरहसे उसे देख-भाल लिया तब कहा—"हरे मुरारे! अब मैंने तुम्हें पहचाना। तुम वही मुँहजली कल्याणी हो न?"

कल्याणीने डरते-डरते पूछा—"आप कौन हैं?"

आगन्तुकने कहा—"मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ सुन्दरी! मुझपर प्रसन्न हो जाओ।"

बड़ी तेजीके साथ वहाँसे हटकर कल्याणीने तनककर कहा—"क्या इस तरह मेरा अपमान करनेके लिये ही आपने मेरी रक्षा की थी? मैं देख रही हूँ कि आप ब्रह्मचारियोंका-सा वेश बनाये हुए हैं। क्या ब्रह्मचारियोंकी यही करनी है? आज मैं निस्सहाय हो रही हूँ नहीं तो आपके मुँहपर लात मारती।"

ब्रह्मचारीनेकहा—"अरी मन्द मुसकानवाली! मैं न जाने कबसे तुम्हारे इस सुन्दर शरीरको स्पर्श करनेके लिये तड़प रहा था।" यह कह, ब्रह्मचारीने लपककर कल्याणीको पकड़ लिया और उसे अपने कलेजेसे लगा लिया। अब तो कल्याणी खिल-खिलाकर हँस पड़ी और झटपट बोल उठी—"अरी वाह री मेरी किस्मत! बहन! तुमने पहले ही क्यों नहीं कह दिया कि तुम्हारा भी मेरा ही जैसा हाल है?"

शान्तिने कहा—"क्यों बहन, क्या महेंद्रको खोजने चली हो।"

कल्याणीने कहा—"तुम कौन हो? देखती हूँ कि तुम्हें तो सब कुछ मालूम है?"

शान्तिने कहा—"मैं ब्रह्मचारी हूँ, संतान-सेनाका अधिनायक हूँ बड़ा भारी वीर पुरुष हूँ। मुझे सब कुछ हाल मालूम है। आज रास्तेमें सिपाही और संतान दोनों ही ऊधम मचाये हुए हैं। आज तो तुम पद-चिह्न नहीं जा सकोगी।"

कल्याणी रोने लगी। शांतिने आंखें नचाकर कहा—"डरनेकी क्या बात है? हमलोग नयनवाण चलाकर ही शत्रु-वध किया करती हैं। चलो, अभी पदचिह्न चलें।"

कल्याणी ऐसी बुद्धिमती स्त्रीकी सहायता पाकर समझा, मानों हाथों स्वर्ग मिल गया। वह बोल उठी—"चलो, तुम मुझे जहाँ ले चलोगी, वहीं चलूँगी।"

तब शांति कल्याणीको साथ लिये हुए जंगली रास्तेसे जाने लगी।

दूसरा परिच्छेद

जिस समय शांति अपने आश्रमसे निकलकर उस गहरी रातके समय नगरकी ओर रवाना हुई थी, उस समय जीवानन्द आश्रममें ही मौजूद थे। शांतिने जीवानन्दसे कहा—"मैं नगरकी ओर जाती हूँ और शीघ्र ही महेन्द्रकी स्त्रीको लेकर आती हूँ। तुम महेन्द्रसे कह रखना कि उसकी स्त्री जीती है।

जीवानन्दने भवानन्दसे कल्याणीके जी उठनेकी बात सुन रखी थी। सब स्थानोंमें घूमने-फिरनेवाली शांतिसे उन्हें इस बातका पता भी मालूम हो गया था कि वह इन दिनों कहाँ रहती है। जीवानन्दने धीरे-धीरे सब बातें महेन्द्रको बतला दी।

पहले तो महेन्द्रको विश्वास ही न हुआ, पर अन्तमें वे इस आनन्दसे अभिभूत हो, मुग्ध हो रहे।

उस रातके बीतते-बीतते शांतिकी बदौलत महेन्द्रकी कल्याणीसे भेंट

हुई। उस सुनसान जंगलमें सालके पेड़ोंकी घनी श्रेणीके भीतर अंधेरेमें छिपे हुए पशु पक्षियोंके सोकर उठनेके पहले ही उन दोनोंमें देखादेखी हुई। उनके इस मिलनके साक्षी केवल नीले आकाशमें सोहनेवाले, क्षीण-प्रकाश नक्षत्र और चुपचाप कतार बाँधे खड़े रहनेवाले, सालके पेड़ ही थे। दूसरे कभी-कभी पत्थरकी शिलाओंसे टकरानेवाली, मधुर कल-कल नाद करनेवाली, नदीका हर-हर शब्द और कभी कभी पूर्व दिशामें उषाके मुकुटकी ज्योति जगमगाती हुई देखकर प्रसन्न होनेवाली एक कोयलकी कूक सुनाई पड़ जाती थी।

एक पहर दिन चढ़ आया। जहाँ शाँति थी, वहीं जीवानन्द भी आ पहुँचे। कल्याणीने शांतिसे कहा—"हमलोग आपके हाथों बिना मोल विक गये हैं! अब हमारी कन्याका पता बताकर आप इस उपकारको पूरा कर दें।"

शांतिने जीवानन्दके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—"मैं तो अब सोती हूँ। आठ पहरसे मैं बैठी तक नहीं हूँ। दो रात जागकर ही बिताई है। मैं पुरुष हूँ—"

कल्याणीने धीरेसे मुसकुरा दिया। जीवानन्दने महेन्द्रकी ओर देखते हुए कहा—"अच्छा, इसका भार मेरे ऊपर रहा। आपलोग पदचिह्न चले जायँ, वहीं आप अपनी कन्याको पा जायँगे।"

यह कह जीवानन्द, निमाईके घरसे कन्याको ले आनेके लिये भरुईपुर चले गये, पर वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि यह काम कुछ आसान नहीं है।

पहले तो निमाई यह बात सुनते ही चकपका गयी और इधर-उधर देखने लगी। इसके बाद उसकी नाक-भौं चढ़ गयी और वह रो पड़ी। फिर बोली—"मैं तो लड़की नहीं दूँगी।"

निमाईने अपने गोल-गोल हाथोंकी कलाईसे जब आंखोंके आँसू पोंछ डाले तब जीवानन्दने कहा—"बहन! रोती क्यों हो? कुछ दूर भी

तो नहीं है ? जब तुम्हारे जीमें आये, जाकर देख आया करना।"

निमाईने होंठ फुलाकर कहा—"अच्छा, तुम लोगोंकी लड़की है, ले जाना चाहते हो, तो ले जाओ। मुझे क्या है?" यह कहती हुई वह भीतरसे सुकुमारीको ले आयी और उसे क्रोधके साथ जीवानन्दके पास पटककर आप पैर पसारकर रोने बैठी। लाचार, जीवानन्द उस बारेमें कुछ भी न कहकर इधर-उधरकी बात करने लगे, पर निमाईका क्रोध किसी तरह कम न हुआ। वह उठकर सुकुमारीके कपड़ोंकी गठरी, गहनोंका सन्दूक, बाल बांधनेके फीते, खिलौने आदि ला-लाकर जीवानन्दके पास फेंकने लगी। सुकुमारी आप ही उन सब चीजों को सहेजने लगी। वह निमाई से पूछने लगी—"माँ! मुझे कहाँ जाना होगा?"

अब तो निमाईसे न रहा गया। वह सुकुमारीको गोदमें लिये रोती हुई चली गयी।

तीसरा परिच्छेद

पदचिह्नके नये दुर्गमें आज महेन्द्र, कल्याणी, जीवानन्द, शांति, निमाई, निमाईके स्वामी और सुकुमारी जमा हैं। सब सुखमें पगे हुए हैं। शांति भी नवीनानन्दका रूप धारण किये हुए आया है। वह जिस रातको कल्याणीको अपनी कुटियामें ले आयी थी, उसी रातको उसने कल्याणीको इस बातकी ताकीद कर दी थी कि अपने स्वामीसे यह कभी न कहना कि नवीनानंद स्त्री है। एक दिन कल्याणीने उसे घरके भीतर बुलाया। नवीनानंद घरके भीतर आये। उन्होंने नौकरोंकी रोक थाम नहीं सुनी।

शांतिने कल्याणीके पास आकर पूछा—"तुमने मुझे किसलिये बुलाया है?"

कल्याणी—"इस तरह कबतक मर्दाना वेश बनाये रहोगी? न

मिलना जुलना होता है, न बातचीत होती है। तुम्हें मेरे स्वामीके सामने अपना यह परदा हटाना पड़ेगा।"

नवीनानंद बड़े फेरमें पड़ गये, बहुत देरतक चुप रहे, अन्तमें बोले—"कल्याणी! इसमें अनेक विघ्न हैं।"

बस, दोनोंमें इसी विषयपर बातें होने लगीं। इधर जिन नौकरोंने नवीनानन्दको भीतर जानेसे रोका था, उन्होंने महेन्द्रके पास जाकर खबर दी कि नवीनानन्द जबर्दस्ती घरके अन्दर घुस गये हैं, उन्होंने कोई रोक-टोक नहीं मानी। यह सुनकर महेंद्र बहुत विस्मित हुए और घरके अन्दर गये। उन्होंने कल्याणीके सोनेके कमरेमें जाकर देखा कि नवीनानन्द घरमें एक ओर खड़े हैं और कल्याणी उनकी देहपर हाथ रखे उनके बघछालेकी गाँठ खोल रही है। महेन्द्र बड़े विस्मित, साथ ही क्रोधित भी हुए।

नवीनानन्दने उन्हें देख, हँसकर कहा—"क्यों गुसाईं जी! एक संतानपर दूसरे संतानका अविश्वास कैसा?"

महेंद्रने कहा—"क्या भवानन्दजी विश्वासपात्र थे?"

नवीनानन्दने आँखें तरेरकर कहा—"तो कल्याणी भवानन्दके शरीरपर हाथ रखकर उनके बघछालेकी गांठ भी नहीं खोलने गयी थी!" कहते-कहते शांतिने कल्याणीके हाथमें चुटकी भरी उसे बघछाला नहीं खोलने दिया।

महेंद्र—"इससे क्या हुआ?"

नवीना०—"आप मेरे ऊपर भले ही अविश्वास कर सकते हैं, पर कल्याणीपर क्योंकर अविश्वास कर सकते हैं?"

अब तो महेंद्र बड़े चक्करमें पड़े, बोले—"क्यों? मैंने इनपर कब अविश्वास किया?"

नवीना०—"नहीं किया, फिर मेरे पीछे-पीछे क्यों चले आये?"

महेंद्र—"मुझे कल्याणीसे एक बात कहनी थी, इसलिये चला आया।"

नवीनानन्द—"अच्छा, तो अभी जाइये। अभी इनसे कुछ बातें कर लेने दीजिये। आपका तो यहीं घर-द्वार है, जब चाहेंगे चले आयेंगे। मैं तो आज बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे आने पाया हूँ।"

महेंद्र तो पूरे बुद्धू बन गये। वे कुछ भी न समझ सके कि यह मामला क्या है? ऐसी बातें तो किसी अपराधीके मुँहसे नहीं निकल सकतीं। कल्याणीके भी रंग-ढग निराले ही थे। वह भी अपराधिनीकी तरह न भागी, न डरी, न शर्मायी—बल्कि धीरे-धीरे मुसकुरा रही थी और वह कल्याणी जो उस दिन वृक्षतले बैठी हुई हँसते-हँसते विष खा गयी थी—वह भला कभी अविश्वासिनी हो सकती है? महेन्द्र मन-ही-मन यह सब सोच ही रहे थे कि इसी समय शान्तिने महेन्द्रको यों बुद्धू बनते देख, धीरेसे हँसकर कल्याणीपर एक तिरछी चितवनका वार किया। सहसा अन्धेरा मानों दूर हो गया। महेन्द्रने देखा कि यह चितवन तो मर्दकी नहीं, स्त्रीकी है! बड़ा साहसकर महेन्द्रने नवीनानन्दकी दाढ़ी पकड़के खींच ली। नकली दाढ़ी-मूँछ एक ही झटकेमें नीचे गिर पड़ी। इसी समय अवसर पाकर कल्याणीने उसके बघछालेकी गाँठ खोल डाली। बघछाला भी नीचे गिर पड़ा। यों परदा खुलते देख, शांति सिर झुकाये खड़ी रह गयी।

तब महेन्द्रने शांतिसे पूछा—"तुम कौन हो?"

शांति—"श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी।"

महेन्द्र—"यह सब धप्पेबाजी है। तुम स्त्री हो।"

शांति—"अच्छा, स्त्री ही सही।"

महेन्द्र—"अच्छा, यह तो कहो, तुम स्त्री होकर हरदम जीवानन्दजीके साथ क्यों रहती हो?"

शांति—"मान लीजिये, कि मैंने यह बात आपसे नहीं कही।"

महेन्द्र—"क्या जीवानन्द यह जानते हैं कि तुम स्त्री हो?"

शांति—"हाँ, जानते हैं।"

यह सुन विशुद्धात्मा महेन्द्र बड़े ही दुःखित हुए। अब तो कल्याणीसे न रहा गया। वह झट बोल उठी—"ये जीवानन्द महाराजकी धर्मपत्नी, श्रीमती शांतिदेवी हैं।"

क्षण भरके लिये महेन्द्रके चेहरेपर प्रसन्नता छा गयी। फिर उसपर अन्धेरा छा गया। कल्याणी इसका मतलब समझ गयी, बोली—'यह पूर्ण ब्रह्मचारिणी है।"

चौथा परिच्छेद

उत्तरी बंगाल मुसलमानोंके हाथसे निकल गया। पर कोई मुसलमान इस बातको नहीं जानता। वे यही कहकर अपने मनको बहलाया करते हैं कि यह सब-कुछ लुटेरोंकी बदमाशी है। हम अभी उन्हें सर किये डालते हैं। इस तरह कितने दिनोंतक चलता सो कहा नहीं जा सकता; परन्तु इस समय भगवान्‌की दयासे वारेन हेस्टिंग्ज कलकत्तेमें बड़े लाट होकर आये। वे यों ही मनको बहलाकर रखनेवाले जीव नहीं थे; क्योंकि यदि उनमें यही गुण होता तो आज भारतमें ब्रिटिश राज्यका कहीं पता न चलता। संतानोंके शासनके लिये मेजर एडवार्डिस नामके दूसरे सेनापति नयी सेना लिये हुए फौरन आ पहुँचे।

एडवार्डिसने देखा कि यह तो युरोपियनोंकी लड़ाई नहीं है। शत्रुओंके पास न सेना है, न राजधानी है, न किला है पर कुछ न होनेपर भी सब उन्हींके अधीन है। जिस दिन जहाँपर ब्रिटिश सेनाका पड़ाव होता है उसी दिनभरके लिये वहाँ ब्रिटिश सेनाका अधिकार हो जाता है। सिर्फ उसी दिनभरके लिये। जब अंगरेजी सेना वहाँसे चली जाती है, तब फिर हर जगह 'बन्देमातरम्'का गान होने लगता है। साहबको इस बातकी थाह नहीं लगने पाती कि ये किधरसे टिड्डियोंके दलकी तरह रात ही भरमें पैदा हो जाते हैं और जो गाँव अंगरेजोंके दखलमें आता है, उसे जला जाते अथवा थोड़ीसी अंगरेजी

फौज होनेसे उसे तत्काल नष्ट कर डालते हैं। अनुसंधान करते-करते साहबको मालूम हुआ कि इन लोगोंने पदचिह्नमें किला बनाया है और वहीं खजाना और सिलहखाना बना रखा है। अतएव उन्होंने निश्चित किया कि उसी किले को हाथमें कर लेना चाहिये।

उन्होंने जासूसोंसे इस बातकी जोह लेनी शुरू की कि पदचिह्नमें कितने संतान रहते हैं। उन्हें जो खबर मिली, उससे उन्होंने किलेपर हमला करना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने मन-ही मन एक बड़ी विचित्र चाल सोची।

माघकी पूर्णिमा आ पहुंची थी। उनके पड़ावसे थोड़ी दूर नदीके किनारे एक मेला लगता था। इस बार मेला जोरोंपर था। यों तो हर बार ही यहाँ एक लाख आदमी जमा हो जाया करते थे। अबकी तो वैष्णव राजा हुए थे। उन लोगोंने इस बारके मेलेको और भी भड़कीला बनानेका विचार किया था। इसीसे अनुमान था कि जितने संतान हैं, सभी पूर्णिमाके दिन मेलेमें पहुँचेंगे। मेजर एडवार्डिसने सोचा कि सम्भव है, पदचिह्नके रक्षकगण भी मेलेमें ही चले आयें। अतएव उसी दिन पदचिह्नपर अधिकार कर लेंगे।

इसी अभिप्रायसे मेजरने इस बातकी तमाम शोहरत कर दी कि वे मेलेके दिन वहाँके लोगोंपर हमला करेंगे! सब वैष्णव उस दिन यहीं आकर जमा होंगे इसलिये एक ही दिनमें, एक ही स्थानमें, वे सबका काम तमाम कर देना चाहते हैं। यह खबर गाँव-गाँवमें फैल गयी। फिर तो जो संतान जहाँ था, वह उसी क्षण वहाँसे हथियार लिए हुए मेलेकी रक्षा करनेके लिए दौड़ पड़ा। सभी संतान माघी पूर्णिमाके दिन नदीके तीर पर मेलेमें आ इकट्ठे हुए। मेजरसाहबका सोचना, बिलकुल ठीक निकला। अङ्गरेजोंके सौभाग्यसे महेन्द्र भी इस फंदेमें आ पड़े। वे थोड़े से ही सैनिकोंको पदचिह्न रखकर, अधिकांश सैनिकोंको लिए हुए मेलेमें चले आये। इन सब बातोंके पहले ही जीवानन्द और शांति पद-

चिह्नसे बाहर चले गये थे। उस समय युद्धकी कोई बात ही नहीं हुई, क्योंकि उन लोगोंकी तबीयत ही लड़ाई-भिड़ाईसे फिरी हुई थी। माघी पूर्णिमाके पुण्य दिवसके अच्छे मुहूर्तमें, पवित्र जलमें प्राण विसर्जन कर प्रतिज्ञा-भङ्गरूपी महापापका प्रायश्चित करनेका ही उनका विचार था। रास्तेमें जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेलेमें जमा हुए संतानोंके साथ अङ्गरेजी सेनासे युद्ध होगा। यह सुनकर जीवानन्दने कहा—"तब चलो, झटपट वहीं चलें। युद्धमें ही प्राण दे देंगे।"

वे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए चले। एक जगह रास्ता एक टीलेके ऊपरसे गया था। टीलेपर चढ़कर उस वीर दम्पतिने देखा कि उसके नीचे थोड़ी दूर हीपर अंगरेजोंकी सेनाका पड़ाव है। शांतिने कहा—"मरनेकी बात तो अभी रहने दो—बोलो, बन्देमातरम्।"

पांचवां परिच्छेद

फिर दोनोंने चुपचाप न जाने क्या सलाह की। इसके बाद जीवानन्द एक जंगलमें छिप गये और शांति एक दूसरे जंगलमें जाकर अद्भुत काण्ड रचनेकी तैयारी करने लगी।

शांति मरने जा रही थी, पर उसने सोच लिया था कि मैं मरते समय स्त्रीका ही वेश बनाये रखूंगी। महेन्द्रने उससे कहा था कि पुरुषका वेश बनाना धोखेबाजी है। इसलिये धोखेका रूप बनाकर मरना अच्छा नहीं। यही सोचकर वह अपनी पिटारी और सिन्दूरकी डिबिया साथ लिये आयी थी उन्हींमें उसके शृंगारकी सब चीजें रहती थीं। अबकी नवीनानन्द वही पिटारी और डिबिया खोलकर अपना वेश बदलने लगे।

उस समयकी रीतिके अनुसार शांतिने अपने लहराते हुए बालोंके गुच्छे इधर-उधर लटकते छोड़ दिये और उन्हींके भीतर मुँहको छिपाये, माथेमें चन्दन और कत्थेकी सुन्दर बिंदी लगाये, हाथमें एक सारंगी लिये, खासी वैष्णवी बनी हुई, अङ्गरेजी सेनाके पड़ावपर आ पहुँची।

उसे देखते ही 'कड़ी-कड़ी मूछोंवाले सिपाही उसपर लट्टू' हो गये। किसीने टप्पा, किसीने गजल, किसीने राधाके सम्बन्धके गीत और किसीने कृष्णावतारके भजन गानेके लिये फरमाइश कर डाली और मनमाने गीत सुन, किसीने चावल किसीने दाल, किसीने मिठाई, किसीने पैसे दिये और किसीने चवन्नीतक दे डाली। वैष्णवी जब वहाँ-का सारा हाल अपनी आँखों देखकर लौटने लगी, तब सिपाहियोंने उससे पूछा—"अब फिर कब आवोगी?" वैष्णवीने कहा—"कुछ कह नहीं सकती; क्योंकि मेरा मकान बहुत दूर है।" सिपाहियोंने पूछा—"कितनी दूर है।" वैष्णवीने कहा—"मेरा घर पदचिह्न ग्राममें है।" इधर उसी दिन मेजर-साहब पदचिह्नका हाल-चाल इधर-उधरसे मालूम कर रहे थे। एक सिपाहीको यह मालूम था। वह वैष्णवीको लिये हुए कप्तान-साहबके पास गया। साहब उसे मेजर साहबके पास ले गया। मेजर साहबके पास पहुँचकर वैष्णवीने मधुर मुसकान छोड़ते हुए, एक तिरछी चितवनका वार साहबके कलेजेपर कर उन्हें पागल बनाते हुए, खंजरी बजाकर गाना शुरू किया—

"म्लेच्छनिवह निधने कलयसि करवालम्।"

साहबने पूछा—"क्यों बीबी! टुमारा घर कहाँपर हाय?"

वैष्णवीने कहा—"मैं बीबी नहीं, वैष्णवी हूँ। मेरा घर पदचिह्न ग्राममें है।"

साहब—"हुआँ एक गार हाय?"

वैष्णवी—"घर तो वहाँ बहुतसे हैं।"

साहब—"गर नहीं, गार, गार—"

वैष्णवी—"अच्छा साहब! मैं तुम्हारे मतलबकी बात समझ गयी। तुम गढ़की बात पूछते हो?"

साहब—"हाँय, हाँय, गार, गार, गार, हाँय?"

शांति—"गढ़ क्यों नहीं है। बड़ा भारी किला है।"

साहब—"किटना आदमी हाय ?"

शांति—"वहां कितने आदमी रहते हैं। यह पूछते हो ? चालीस पचास हजार होंगे।"

साहब—"नोन्सेन्स, एक केल्लामें दो-चार हजार रहने सकटा है। हुआँपर आबी हाय, इया निकाल गया ?"

शांति—"अब वे कहाँ निकलकर जायंगे ?"

साहब—"मेलामें। टुम कब आया हुआँसे ?"

शांति- "कल आई हूँ साहब"

साहब—"वह लोग आज निकाल गिया होगा।"

शांति मन-ही-मन सोच रही थी—साहब! यदि मैंने तेरे बापका श्राद्ध नहीं कर डाला तो फिर मेरा वैष्णवी बनना ही व्यर्थ है। मैं देखूँगी कि तेरा सिर सियार कितनी देरमें खाते हैं।

ऊपरसे बोली—"हाँ यह तो हो सकता है कि वे आज बाहर हुए हों। मैं क्या जानूँ गरीब भिखमंगिन ठहरी, गीत गा-गाकर भीख माँगती-फिरती हूँ, मुझे इन बातोंका क्या पता ? बकते-बकते गला सूख गया लाओ पैसा दो। ले-देकर चल दूं। और यदि अच्छी रकम इनाममें देना कबूल करो तो तुम्हें परसों आकर वहाँका राई-रत्ती हाल बतला जाऊँगी।"

साहबने झन्नसे एक रुपया निकाल शांतिकी ओर फेंककर कहा—"परसो नहीं बीबी !"

शांतिने कहा—"अरे जा बे-मुए! बीबी क्यों कहता है ? वैष्णवी कह वैष्णवी।"

एडवार्डिस—"परसों नहीं, हमको आज रातको खबार मिलनी चाहिये।"

शान्ति—"अबे जा अभागे! सिरके नीचे बन्दूक रख, शराब पी, कानमें तेल डाल, सो रह। आज मैं दस कोस जाऊँ, दस कोस आऊँ

और इनको राततक खबर ला दूँ । चल हट, हरामी कहींका ।"

एड०—"हरामी किसको बोलता है ?"

शान्ति—"जो बड़ा भारी वीर जर्नल होता है ।"

एड०—"ओह ! हम क़ाइवका माफिक भारी जर्नल होने सकता है । लेकिन आज हमको खबर मिलना चाहिये । हम तुमको एक साव रुपिया बकसीस देगा ।"

शान्ति—"सौ दो, चाहे हजार दो, इन टाँगोंसे तो बीस कोस चलना दुश्वार है ।"

एड०—"घोरापर चारकर जावो ।"

शान्ति—"यदि घोड़ेपर ही चढ़ने आता, तो मैं तुम्हारे खीमेमें भीख माँगने आती ?"

एड०—"एक आदमी तुमको गोदमें ले जायगा ।"

शान्ति—"तुम मुझे गोदमें बैठाकर ले जाओगे; क्या मुझे लज्जा नहीं लगती ?"

साहब—"किया मुसकिल ? हम तुमको पाँच साव रुपिया देगा ।"

शान्ति—"अच्छा कौन जायगा ? क्या तू ही जायगा ?"

यह सुन; साहबने खड़े हुए लियडले नामक एक नौजवान सिपाहीकी ओर अँगुलीसे इशारा कर कहा—"क्यों लियडले ! तुम जायगा ?"

लियडलेने शांतिका रूप-यौवन देखकर कहा—"बड़ी खुशीसे ।"

एक खूब बढ़िया अरबी घोड़ा कसकर तैयार किया गया । लियडले तैयार होकर चला आया । जब वह शान्तिका हाथ पकड़कर उसे घोड़ेपर चढ़ाने गया, तब शांतिने कहा—"छिः छिः इतने आदमियोंके सामने ? क्या मेरे लाज-शर्म नहीं ? चलो, आगे बढ़ो, इस छावनीके बाहर चलो ।"

लियडले घोड़ेपर सवार हो, धीरे-धीरे घोड़ेको बढ़ा ले चला ।

शान्ति पीछे चली। इसी तरह आगे-पीछे चलते हुए वे लोग पड़ावके बाहर हो गये।

शिविरके बाहर आ, सुनसान मैदान देखकर शान्ति लिण्डलेके पैरपर पैर रखकर एक ही उछालमें घोड़े पर चढ़ गयी। लिण्डलेने मुसकुराते हुए कहा,—"टुम तो पक्का घुड़सवार हाय।" शान्तिने कहा—"हमलोग ऐसे पक्के घुड़सवार हैं कि तुम लोगोंके साथ घोड़ा चढ़ते हमलोगोंको शर्म मालूम होती है। छिः रिकाबपर पाँव रखकर घोड़ा चढ़ना भी कोई घुड़सवारी है?"

यह सुन लिण्डलेने अपनी हेकड़ी भरनेके लिए झटपट रिकाबसे पाँव निकाल लिए। यह देखते ही शान्तिने उस बेवकूफ अंगरेजके बच्चेके गलेमें हाथ डालकर उसे घोड़ेसे नीचे गिरा दिया। शान्ति अच्छी तरह घोड़ेपर आसन जमा, उसे एँड़ लगाती हुई, तीरकी तरह दौड़ा ले चली। चार वर्षतक सन्तानोंके साथ रहकर शान्तिने घुड़-सवारी करना अच्छी तरह सीख लिया था। अगर घुड़सवारी नहीं जानती होती तो जीवानन्दके साथ थोड़े ही रह सकती थी! लिण्डलेका पैर टूट गया। वह जहाँका तहाँ पड़ा रह गया। शांति हवासे बातें करती हुई घोड़ेको दौड़ाती चली गयी।

जिस वनमें जीवानन्द छिपे हुए थे, वहीं पहुँचकर शांतिने जीवा-नन्दको सब समाचार सुनाया। जीवानन्दने कहा—"अच्छा, तो मैं अभी जाकर महेन्द्रको होशियार किये देता हूँ। तुम मेलेमें जाकर सत्यानन्दको खबर दो। बस, घोड़ा दौड़ाये चली जाओ, जिसमें तुरन्त समाचार मिल जाय।"

अब तो दोनों व्यक्ति दो तरफको रवाना हो गये। कहना व्यर्थ है कि शांतिने फिर नवीनानन्दका रूप बना लिया।

छठा परिच्छेद

एडवार्डस पक्का अँगरेज था। नाके-नाकेपर उसने अपने आदमी मुकर्रर कर दिये थे। शीघ्र ही उसके पास खबर पहुँची कि उस वैष्णवीने लिपहलेको घोड़ेसे नीचे गिरा दिया और आप घोड़ा दौड़ाये हुए न जाने किधर भाग गयी। सुनते ही वह बोल उठा—"अरे वह तो पूरी शैतानकी खाला निकली। अभी खीमे उठाओ।"

अब तो चारों तरफ डेरे तम्बुओंके खूँटोंपर हथौड़ेकी चोट पड़ने लगी। मेघ रचित अमरावतीकी तरह वह वस्त्र-नगरी बातकी-बातमें आँखोंकी ओट हो गयी। सारा सामान गाड़ियोंपर लादा गया। कुछ मनुष्य घोड़ोंपर और कुछ पैदल चल पड़े। हिन्दू, मुसलमान, मदरासी और गोरे सिपाही कन्धेपर बन्दूक रखे, जूते मचमचाते हुए कूच करने लगे। तोप खींचने वाली गाड़ियाँ घरघराती हुई जाने लगीं।

इधर महेन्द्र सन्तान सेना लिए हुए धीरे-धीरे मेलेकी तरफ बढ़े आ रहे थे। उसी दिन तीसरे पहर उन्होंने दिन ढलते देख, एक जगह डेरा डालना ही उचित समझा। वैष्णवोंके पास डेरे तम्बू तो होते नहीं, वे पेड़ोंके नीचे टाट या कथरी बिछाकर सो रहते हैं। कभी थोड़ा सा हरिचरणामृत पीकर ही रात बिता देते हैं। यदि थोड़ी बहुत क्षुधा बाकी रहती है तो वह स्वप्नमें वैष्णवीके अधरामृत पान करनेसे ही मिट जाती है। पास ही एक जगह ठहरने योग्य स्थान था। एक बड़ा भारी बगीचा था, जिसमें आम कटहल, बबूर, इमली बहुतसे पेड़ लगे हुए थे। महेन्द्रने आज्ञा दी—"यहीं डेरा डालो।" उसके पास ही एक टीला था, जो बड़ा ऊबड़-खाबड़ था। महेन्द्रने एक बार सोचा कि उसी टीलेपर डेरा डाला जाय। इसीसे उन्होंने उस जगहको देख आनेका विचार किया।

यही विचारकर वे घोड़ेपर सवार हो, धीरे-धीरे उस टीलेपर चढ़ने लगे। कुछ ही दूर गये होंगे कि एक युवा वैष्णव सेनाके बीचमें आकर बोला—"चलो, चलो टीलेपर चढ़ चलो।" आस-पासके लोग अचरजमें आकर पूछ बैठे—"क्यों; मामला क्या है?"

वह योद्धा एक मिट्टीके ढेरपर खड़ा होकर बोला—"चलो इस चाँदनी रातमें पर्वत-शिखरपर चढ़कर नूतन वसन्तके नूतन पुष्पोंकी सुगन्धका आनन्द लेते हुए आज हमलोग शत्रुओंसे युद्ध करें।" सन्तानोंने देखा कि ये तो सेनापति जीवानन्द हैं, तब 'हरे मुरारे' का उच्च निनाद करते हुए सभी संतान गण, भाले जमीनमें टेककर उसीसे अड़-कर खड़े हो रह और तदनंतर जीवानन्दके पीछे-पीछे बड़ी तेजीके साथ उस टीलेपर चढ़ने लगे। एकने सजा-सजाया घोड़ा लाकर जीवानन्दको दिया। दूरहो-से यह सब हाल देखकर महेंद्र भौंचक-से हो रहे। उनकी समझमें न आया कि ये लोग बिना बुलाये क्यों चले आ रहे हैं?

यही सोच, महेंद्रने घोड़ेका रुख फेर दिया और चाबुककी मारसे घोड़ेकी पीठका खून निकालते हुए पर्वतसे नीचे उतरने लगे। संतान सेनाके आगे आगे चलनेवाले जीवानन्दको देखकर महेंद्रने पूछा—"आज यह कैसा आनन्द है।"

जीवानन्दने हँसकर कहा—"आज तो बड़ा ही आनन्द है। टीलेके उसी पार एडवार्डिस-साहब हैं। जो पहले ऊपर चढ़ जायगा उसीकी जीत होगी।"

यह कह जीवानन्दने संतान सेनाकी ओर फिरकर कहा—"तुमलोग मुझे पहचानते हो या नहीं? मैं हूँ जीवानन्द गोस्वामी। मैंने हजारों-के प्राण ले डाले हैं।"

घोर कोलाहलसे कानन और प्रांतरको प्रतिध्वनित करते हुए सब-के-सब एक साथ कह उठे—"हाँ, हमलोग आपको पहचानते हैं, आप ही जीवानन्द गोस्वामी हैं।"

जीवा०—"बोलो हरे मुरारे।"

वह कानन प्रांतर एक बार सहस्र-सहस्र कण्ठोंकी ध्वनिसे गूँज उठा। सब-के सब एक साथ "हरे मुरारे!" कह उठे।

जीवा०—"टीलेके उस पार शत्रु मौजूद हैं। आज ही इस स्तूप-

शिखरँपर खड़े होकर हमलोग इस नीलाम्बरी यामिनीके रहते-रहते युद्ध करेंगे। जल्दी आओ; जो पहले शिखरपर चढ़ेगा वही जीतेगा। बोलो! बन्देमातरम्।"

इसके बाद ही कानन प्रांतर प्रतिध्वनित करता हुआ 'बन्देमातरम्' का गाना गूँज उठा। धीरे-धीरे संतान-सेना पर्वत शिखरपर चढ़ने लगी। पर उन लोगोंने एकाएक सभीत होकर देखा कि महेन्द्रसिंह बड़ी जल्दी जल्दी नीचे उतरते हुए तुरही बाजा बजा रहे हैं। देखते-ही-देखते टीलेके शिखर-प्रदेश में तोपें लिये हुए अंगरेजोंकी गोलन्दाज पलटन आ पहुँची। ऐसा मालूम होने लगा, मानों वह नीले आसमानपर चढ़ी जा रही है। वैष्णवी सेना ऊँचे स्वरसे गा उठी।

> तुम्हीं विद्या, तुम्हीं भक्ति,
> तुमही हो माँ; सारी शक्ति।
> त्वं हि प्राणो शरीरे!"

पर अंगरेजोंकी तोपोंकी अररघायंमें वह गीतध्वनि मानों डूब गयी। सैकड़ों सन्तान हताहत हो, हथियार बन्दूक लिये जमीनपर ढेर हो गये। फिर अरर-धांयकी आवाज दधीचिकी हड्डियोंको मात करती, समुद्रकी तरंगोंको तुच्छ करती, इन्द्रके वज्रोंकी याद दिलाने लगी। जैसे किसानके हंसियेके सामने पके धानके पौधोंके ढेर लग जाते हैं वैसे ही संतान-सेना खंड खंड होकर धराशायी होने लगी। जीवानन्द और महेन्द्रके सारे यत्न व्यर्थ होने लगे। पहाड़से नीचे गिरनेवाला पत्थरके ढोकोंकी तरह सन्तान-सेना टोलेसे नीचे उतरने लगी। कौन किधर भागा जा रहा है, कोई ठिकाना नहीं। इसी समय सबका एक ही साथ संहार करनेके लिये "हुर्रे हुर्रे" का हल्ला मचाती हुई गोरी पलटन नीचे उतर पड़ी। पर्वतसे निकली हुई विशाल नदीके साथ संगीन ऊपर उठाये, इस भागती हुई संतान-सेनाका पीछा करने लगी। जीवानन्द सिर्फ एक बार महेन्द्रसे मिल सके, बोले—"आओ, हमलोग यहीं प्राण दे दें।"

महेन्द्रने कहा—"मरनेसे ही यदि युद्धमें जय मिलती होती तो मैं जरूर प्राण दे देता; पर व्यर्थ प्राण गँवाना तो वीरोंका काम नहीं है।"

जीवा०—"अच्छा, मैं वृथा ही प्राण दूंगा। लड़ाईमें ही मरूँगा।"

तब पीछे मुड़कर जीवानन्दने बड़े जोरसे ललकारकर कहा—"कौन हरिनाम लेते हुए मरना चाहता है? जो चाहता हो, वह मेरा साथ दे।"

बहुतेरे आगे बढ़ आये। जीवानन्दने कहा—"ऐसे नहीं ईश्वरको साक्षीकर शपथ करो कि देहमें प्राण रहते पीछे पैर न देंगे।"

जो आगे बढ़े थे, वे पीछे हट गये। जीवानन्दने कहा—"कोई नहीं आता? अच्छा तो मैं अकेला ही चलता हूँ।"

जीवानन्दने घोड़ेपर सवार हो, बहुत दूर पीछेकी ओर खड़े महेन्द्रको पुकारकर कहा—"भाई नवीनानन्दसे कहना कि मैं तो अब सदाके लिये संसारसे बिदा होता हूँ। उनसे परलोकमें ही मिलना होगा।"

यह कह वह वीर पुरुष गोलियों की बौछारकी कुछ भी परवाह न कर घोड़ेको आगे बढ़ा और बायें हाथमें भाला, दाहिनेमें बन्दूक लिये, मुँहसे 'हरे मुरारे' कहते हुए आगे बढ़ा। युद्धकी कोई संभावना नहीं—उतने बड़े साहसका कोई फल नहीं—तो भी 'हरे मुरारे' हरे मुरारे' करते हुए जीवानन्द शत्रुओंके व्यूहमें घुस पड़े!

महेन्द्रने भागते हुए सन्तानोंको पुकारकर कहा—"देखो, एकबार तुम लोगोंको लौटकर जीवानन्द गुसाईंको देखना चाहिये। तुम लोगोंके पहुँच जानेसे वह प्राण न देंगे।" लौटकर कितने ही सन्तानोंने जीवानन्दकी अमानुषी कीर्ति देखी। पहले तो वे बड़े ही विस्मित हुए। इसके बाद कह उठे—"क्या जीवानन्द ही मरना जानता है? हम लोग क्या नहीं जानते? चलो, हम सब ही जीवानन्दके साथ-साथ बैकुण्ठको चले चलें।"

यह बात सुन कितने सन्तान आगे बढ़े। उनकी देखादेखी और

भी कुछ लोग आगे आये। उन्हें आगे बढ़ते देख, कुछ और लोग आगे बढ़ते नजर आये। बड़ा शोरगुल मच गया, उस समयतक जीवानन्द व्यूहमें घुस चुके थे। सन्तान सेना फिर न देख सकी।

इधर समस्त क्षेत्रके सन्तानोंने देखा कि फिर बहुतसे सन्तान लौटे आ रहे हैं। सबने सोचा कि सन्तानोंकी जीत हो गयी। उन्होंने शत्रुको मार भगाया। यह देख सारी सन्तान सेना 'मार मार' की आवाज करती हुई अंग्रजी फौजका पीछा करने लगी।

इधर अंग्रजी सेनामें भी बड़ा भारी गोलमाल मचा हुआ था। सिपाहियोंने युद्धकी चिन्ता छोड़, भागना शुरू कर दिया था और गोरे सगीन उठाये अपने-अपने डेरोंकी ओर दौड़े चले जा रहे थे। इधर-उधर नजर दौड़ाकर महेन्द्रने देखा कि टीलेके ऊपर बहुतसी सन्तान-सेना दिखाई दे रही है। उन्होंने और भी देखा कि वे नीचे उतरकर अङ्गरेजी फौज पर बड़ी बहादुरीके साथ हमला कर रहे हैं। उस समय उन्होंने सन्तानोंको पुकारकर कहा—"सन्तान-गण देखो शिखरपर प्रभु सत्यानन्द गोस्वामीकी ध्वजा फहराती हुई दिखाई दे रही है। आज स्वयं मुरारि, मधुकैटभारि, कंश केशि नाशकारी रणमें अवतीर्ण हुए हैं—आज लाखों सन्तान उस टीलेपर जमा हैं। बोलो—'हरे मुरारे! हरे मुरारे!' मुसलमानोंको जहाँ पाओ मार गिराओ। आज एक लाख सन्तान टीलेपर आकर जमा हैं।"

उस समय 'हरे मुरारे' की भीषण ध्वनिसे सारा कानन प्रान्तर मथित होने लगा। सभी सन्तान 'मा भैः मा भैः' का रव करते, ललित तालपर अस्त्रोंको झनकारते सब जीवोंको विमोहित करने लगे। शाही पल्टन पत्थरसे टकराई हुई निर्झरिणीकी तरह ठोकर खाकर भौंचक-सी हो रही, डर गयी और तितर-बितर होने लगी। इसी समय पचीस सन्तानोंकी सेना लिये हुए सत्यानन्द ब्रह्मचारी शिखरसे समुद्र-पातकी तरह ऊपर आ पड़े। बड़ी घनघोर लड़ाई हुई।

जैसे दो बड़े-बड़े पत्थरोंके बीच पड़कर छोटी-सी मक्खी पिस जाती है, वैसे ही दोनों सन्तान-सेनाओंके बीच पड़कर राजकीय सेना मसल डाली गयी। एक भी प्राणी जीता न बचा, जो वारेन हेस्टिंग्जके पास संवाद लेकर जाय।

———

सातवां परिच्छेद

आज पूनो है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय सुनसान हो रहा है। वह घोड़ोंको उछल-कूद, बन्दूकोंकी कड़कड़ाहट, तोपोंकी गड़गड़ाहट न रही, जो नीचेसे ऊपरतक धुंआ-ही-धुंआ नजर आता था, वह कैफियत जारी रही। इस समय न तो कोई 'हुर्रे' कहता है न हरिध्वनि कर रहा है। केवल स्यार कुत्ते और गीध शोर मचाए हैं। इससे भी भीषण वह घायलोंका रह रह कर कराहना है। किसीका हाथ कट गया है, किसीका सिर कट गया है, किसीका पैर टूट गया है। कोई बाप-बाप चिल्ला रहा है, कोई पानी मांग रहा है, कोई मौतकी घड़ियाँ गिन रहा है। बंगाली, हिन्दुस्तानी, अंगरेज, मुसलमान सब साथ पड़े हुए हैं। जिंदों और मुर्दोंकी, आदमियों और घोड़ोंकी आपसमें खूब रेल-पेल मची हुई है। उस माघकी पूर्णिमाकी उजियाली रातमें वह रणभूमि बड़ी भयंकर मालूम पड़ रही थी। किसीकी उधर जानेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

औरोंकी भले ही हिम्मत न पड़ती हो; पर आधी रातको एक स्त्री उस अगम्य रणक्षेत्रमें जाकर इधर-उधर घूम रही थी। हाथमें एक मसाल लिये वह उन मुर्दोंके ढेरमें न जाने किसे ढूढ़ रही थी। प्रत्येक शवके पास पहुंचकर मसालकी रोशनीसे चेहरा देखकर आगे बढ़ जाती थी। वह जहाँ कहीं किसी लाशको घोड़ेके नीचे पड़ी पाती, वहीं मसालको नीचे रख घोड़ेकी लाशको दोनों हाथोंसे हटाती और उस

लाशको देखने लगती। देखनेपर जब उसे यह मालूम हो जाता कि यह लाश तो उसकी नहीं है जिसे मैं ढूढ़ रही हूँ तब वह वहाँसे चल देती थी। इस तरह घूमती-फिरती हुई वह सारा मैदान ढूंढ़ आती, पर जिसे वह खोजती थी, उसे कहीं नहीं पाया। तब लाचार हो, मसाल फेंक उस मुर्दोंकी ढेरसे भरे और खूनसे रंगे हुए युद्धक्षेत्रमें लोट-लोट-कर रोने लगी। वह थी शांति। वह जीवानन्दकी लाश ढूंढ़ रही थी।

शान्ति जमीनमें पड़ी लोट-पोटकर रोने लगी। इसी समय एक अत्यन्त मधुर और करुण भरी ध्वनि उसके कानमें पड़ी। उसने सुना मानो कोई कह रहा है—'बेटी रोओ मत।' शांतिने आँखें उठाकर चन्द्रमाके प्रकाशमें देखा कि सामने एक अपूर्व दर्शनीय जटाजूटधार महापुरुष खड़े हैं। उनका डीलडौल बड़ा लम्बा चौड़ा है।

शांति उठकर खड़ी हो गयी। आनेवाले महात्माने कहा—"देखो बेटी! रोओ मत। तुम मेरे साथ आओ। मैं जीवानन्दकी लाश ढूंढ़ लाता हूँ।"

यह कह, वे महापुरुष शांतिको रणक्षेत्रके बीचोबीच ले गये। वहीं एक-पर एक असंख्य लाशोंके ढेर लगे हुए थे। शांति उन्हें हटा नहीं सकती थी। उन्हीं महाबलवान पुरुषने एक-एक करके उन लाशोंको हटाते हुए एक लाश बाहर निकाली। शान्ति झट पहचान गयी कि यह लाश जीवानन्दकी है! उनके सारे शरीरमें घाव लगे हुए थे। जिनसे सर्वाङ्ग लहूमें लथपथ हो रहा था। शान्ति साधारण स्त्रियोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगी।

महात्माने फिर कहा—"रोओ मत! जीवानन्द मरा नहीं है। तुम चित्त स्थिर कर जरा इस लाशकी परीक्षा करके देखा। पहले नाड़ी देखो।"

शान्तिने उस लाशकी नाड़ी पकड़कर देखी। नाड़ी में एकदम गति नहीं थी। उन्हीं महापुरुषने कहा—"छातीपर हाथ रखकर देखो।"

शान्तिने कलेजेपर हाथ रखकर देखा कि धड़कन एकदम नहीं है। सारी देह ठण्ढी हो रही है।

उस पुरुषने फिर कहा—"नाकके पास हाथ ले जाकर देखो, साँस चलती है या नहीं?"

शान्तिने देखा, साँस बिलकुल बन्द है।

उस पुरुषने कहा—"अच्छा अबकी बार मुँहमें उँगली डालकर देखो कुछ गरमी है या नहीं?"

शान्तिने उँगली मुँहमें डालकर देखा और कहा—"मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता।" शान्तिके मनमें आशा पैदा हो रही थी।

महापुरुषने बायें हाथसे जीवानन्दकी लाश छुई। बोले—"तुम बहुत डर गयी हो, हिम्मत हार गयी हो, इसीसे तुम्हें नहीं मालूम पड़ता। एकबार फिर देखो। मुझे तो अबतक शरीरमें कुछ गरमी मालूम पड़ती है।"

शांतिने अबकी फिर नाड़ी देखी, कुछ-कुछ चलती जान पड़ी। अचरजमें आकर उसने कलेजेपर भी हाथ रखकर देखा, वह भी कुछ-कुछ धड़कता हुआ मालूम पड़ा। नाकके पास उँगली ले जाते ही साँस चलनेकी आहट मिली। मुखके भीतर भी गरमी मालूम पड़ी।

शान्तिने पूछा—"क्या अब तक इस शरीरमें प्राण थे? अथवा आपने नयी जान डाल दी है?"

वे बोले—"बेटी कहीं ऐसा भी होता है? क्या तुम उसे ढोकर तालाबके पास ले चल सकती हो? मैं चिकित्सक हूँ, वहीं उसकी चिकित्सा करूँगा।"

शान्तिने झटपट जीवानन्दको गोदमें उठा लिया और तालाबकी ओर ले चली। महापुरुषने कहा—"तुम उसे तालाबके पास ले जाकर जहाँ-जहाँ खून लगा है सब अच्छी तरहसे धो डालो।"

शान्तिने जीवानन्दको तालाबके पास ले जाकर खूनके सब दाग धोये। तबतक वे महापुरुष जङ्गली लता-पत्रोंका प्रलेप बनाये हुए आ पहुँचे। उन्होंने तमाम जख्मोंके ऊपर वही लेप लगा दिया और बार-बार जीवानन्दके शरीरपर हाथ फेरना शुरू किया। थोड़ी ही देरमें जीवानन्द चटपट उठ बैठे। उठते ही उन्होंने शान्तिकी ओर देखते हुए कहा—"युद्धमें किसकी जय हुई।"

शान्तिने कहा—"तुम्हारी। इन महात्माको प्रणाम करो।" उसी क्षण सबने देखा, वहाँ तो किसीका पता भी नहीं है। अब वे प्रणाम किसको करें?

इधर पास ही जीतकी खुशीमें फूली हुई सन्तान-सेना बड़ा ऊधम उत्पात मचाये हुए थी। पर शान्ति और जीवानन्द वहांसे हिलेतक नहीं, चुपचाप उस पूर्णिमाकी चाँदनीमें चमकती हुई पुष्करिणीके घाट-पर बैठे रहे। औषधिके प्रभावसे जीवानन्दका शरीर तुरन्त भला चङ्गा हो गया! उन्होंने कहा—"शान्ति! उस वैद्यकी औषधिका कैसा चमत्कार है। मेरे शरीरमें इस समय न तो कहीं कुछ पीड़ा है, न किसी तरहकी थकावट मालूम होती है। अब चलो, कहाँ चलोगी? वह देखो सन्तान-सेनाके जय-जयकारका शब्द सुनाई दे रहा है।"

शान्तिने कहा—"अब नहीं, माताका कार्योद्धार हो चुका। देश सन्तानोंका हो गया। हम लोग कुछ राज्य में हिस्सा बाँटना नहीं चाहते, अब वहाँ किस लिए चलें?"

जीवा०—"जो राज्य औरोंसे छीना है उसकी अपने बाहुबलसे रक्षा करेंगे।"

शान्ति—"रक्षा करनेके लिए महेन्द्र काफी हैं। स्वयं महाप्रभु सत्यानन्द मौजूद हैं। तुमने सन्तान-धर्मके लिहाजसे अपने पापका प्रायश्चित करनेके लिए देह-त्याग कर दिया था। अब फिरसे पाये हुए इस शरीरपर सन्तानोंका कोई दावा नहीं है। संतानोंके लेखे तो हम

मर चुके। अब इसे देखनेपर संतानगण कह सकते हैं कि तुम युद्धके प्रथम प्रायश्चित्त करनेके डरसे छिप गये थे और अब जीत होनेकी खबर पाकर राज्यमें हिस्सा बाँटने आये हो।"

जीवा०—"यह क्या शांति ? लोग बुराई करेंगे, इसी डरसे क्या मैं अपना काम छोड़ दूँगा ? मेरा काम माताकी सेवा करना है। कोई कुछ भी क्यों न कहे, पर मैं मातृ-सेवा न छोड़ूँगा।"

शांति—"अब तुम ऐसा करनेके अधिकारी नहीं रहे, क्योंकि तुमने मातृ-सेवाके लिए अपनी जान दे दी थी। यदि फिर माताकी सेवा करने पाये, तो प्रायश्चित्त ही कौन-सा हुआ। मातृ-सेवासे वञ्चित होना ही इस प्रायश्चित का मुख्य अङ्ग है, नहीं तो केवल जान दे डालना ही क्या कोई बड़ा भारी काम है ?"

जीवा०—"शांति ! असली तत्वतक तुम्हीं पहुँची हो। मैं अपने प्रायश्चित्तको अधूरा न रखूँगा। मेरा सुख सन्तानधर्मका पालन करना ही है, उसी सुखसे मैं अपनेको वञ्चित करूँगा। पर कहाँ जाऊँ ! मातृ-सेवा त्यागकर घर जा सुख भोगना तो अपनेसे नहीं बन पड़ेगा।"

शान्ति—"मैं भी तो घर जाने की बात नहीं कर रही हूँ। हम लोग अब गृहस्थ नहीं रहे। दोनों जने इसी तरह संन्यासी रहेंगे। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करते रहेंगे। चलो हम लोग इधर-उधर तीर्थोंमें घूम-फिरकर दिन बितायें।"

जीवा०—"उसके बाद ?"

शांति—"उसके बाद हिमालयपर कुटी बना दोनों जने देवताकी आराधना करेंगे और यही वर मांगेंगे कि हमारी माताका मंगल हो।"

इसके बाद दोनों जने हाथ मिलाये उस आधी रातके समय, उस निखरी हुई चाँदनी में न जाने किधर गायब हो गये।

हाय माँ ! क्या वे फिर आयेंगे ! क्या तू जीवानन्द-सा पुत्र और शान्ति सी कन्या फिर नहीं उत्पन्न करेगी !

आठवां परिच्छेद

सत्यानन्द महाराज बिना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप रणक्षेत्रसे आनन्दमठ में चले। वे वहाँ गम्भीर रात्रिमें विष्णुमण्डपमें बैठे ध्यानमें डूबे हुए थे। इसी समय वही चिकित्सक वहाँ आ पहुँचे। देखकर सत्यानन्द उठ खड़े हुए और उन्होंने प्रणाम किया।

चिकित्सकने कहा—"सत्यानन्द! आज माघकी पूर्णिमा है!"

सत्या०—"चलिये, मैं तैयार हूँ; पर महात्माजी! कृपाकर मेरा सन्देह दूर कर दीजिए। इधर ज्योंही युद्धमें जय हुई सन्तानधर्म निष्कण्टक हुआ, त्योंही मुझे चलनेकी आज्ञा क्यों दी जा रही है?"

आनेवालेने कहा—"तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। मुसलमानों-का राज्य चौपट हो गया। अब तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं है। व्यर्थमें प्राणियोंकी हत्या करनेसे क्या कोई लाभ है।"

सत्या०—"मुसलमानी राज्य चौपट हुआ सही; पर हिन्दुओंका राज्य तो नहीं स्थापित हुआ? इस समय कलकत्तेमें अंगरेजोंका जोर बढ़ता जा रहा है।"

महात्मा—"अभी हिन्दू राजकी स्थापना नहीं हो सकती, तुम्हारे यहाँ रहनेसे व्यर्थ ही नरहत्या होगी, इसलिये चलो।"

यह सुनकर सत्यानन्दको बड़ी मर्मवेदना हुई। वे बोले—"प्रभो! यदि हिन्दुओंका राज्य न होगा, तो फिर किसका होगा? क्या फिर मुसलमान ही राजा होंगे?"

महात्मा—"नहीं, अब अंगरेजोंका ही राज्य स्थापित होगा।"

सत्यानन्दकी दोनों आँखोंसे आँसू बहने लगे। वे ऊपर रखी हुई मातृ स्वरूपिणी मातृभूमिकी प्रतिमाकी ओर फिरकर, हाथ जोड़ रुँधे

हुए कण्ठसे कहने लगे—"हाय ! माँ ! मुझसे तुम्हारा उद्धार करते न बन पड़ा। तुम फिर म्लेच्छोंके ही हाथ में जा पड़ोगी। सन्तानोंका अपराध मत समझना। माता ! आज रणक्षेत्रमें ही मेरी मृत्यु क्यों न हो गयी ?"

महात्माने कहा—"सत्यानन्द ! कातर मत हो। तुमने बुद्धिभ्रममें पड़कर दस्यु-वृत्ति द्वारा धन संग्रहकर लड़ाई जीती है। पापका फल कभी पवित्र नहीं होता। इसलिए तुम लोगोंसे इस देशका उद्धार न हो सकेगा। और जो कुछ होनेवाला है, वह अच्छा ही है। अंगरेजोंका राज्य हुए बिना सनातन धर्मका पुनरुद्धार नहीं हो सकता। महापुरुष-लोग जिस तरह सब बातोंको समझा करते हैं मैं उसी तरह तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ! तैंतीस करोड़ देवताओंकी पूजा करना सनातनधर्म नहीं है। वह तो एक निकृष्ट लौकिक धर्म है। इसीके मारे सच्चा सनातन धर्म—जिसे म्लेच्छगण हिन्दू धर्म कहते हैं—लुप्त हो रहा है ! हिन्दूधर्म ज्ञानात्मक है, क्रियात्मक नहीं, वह ज्ञान दो प्रकारका होता है—बाहरी और भीतरी। भीतरी ज्ञान ही सनातनधर्मका प्रधान अंग है, किन्तु जबतक बाहरी ज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता, तबतक भीतरी ज्ञान उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो नहीं रहती। बिना स्थूलको जाने, सूक्ष्म नहीं जाना जाता। इस समय इस देशका बाहरी ज्ञान बहुत दिनोंसे लुप्त हो रहा है। इसीलिये सनातन धर्मका भी लोप हो रहा है। सनातनधर्मका पुनरुद्धार करनेके लिये, पहले बाहरी ज्ञानका प्रचार करना आवश्यक है। इस समय इस देशमें वह ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान सिखलानेवाले लोग भी नहीं हैं। हम लोग लोकशिक्षामें निरे अधकचरे हैं। इसलिये और-और देशोंमें बाहरी ज्ञान लाना पड़ेगा। अङ्गरेज इस बाहरी ज्ञानमें बड़े प्रवीण हैं। वे लोकशिक्षामें पूरे पण्डित हैं। इसीसे हमें अंगरेजोंको राजा मानना पड़ेगा। इस देशके लोग अंगरेजी शिक्षा द्वारा बाहरी तत्वोंका ज्ञान प्राप्तकर अन्तस्तत्वोंको समझनेके

योग्य बनेंगे। उस समय सनातनधर्मका प्रचार करनेमें कोई विघ्नबाधा न रह जायगी। उस समय सच्चा धर्म आप-से-आप जगमगा उठेगा। जबतक ऐसा नहीं होता, जबतक हिन्दू फिरसे ज्ञानवान, गुणवान और बलवान नहीं हो जाते, तबतक अँगरेजोंका राज्य अटल अचल बना रहेगा। अँगरेजोंके राज्यमें प्रजा सुखी होगी, सब लोग बखटके अपने-अपने धर्मकी राहपर चलने पायेंगे। अतएव हे बुद्धिमान! तुम अँङ्गरेजों के साथ युद्ध करनेसे हाथ खींच लो और मेरे साथ चलो।"

सत्यानन्दने कहा—"महात्मन! यदि आप लोगोंको अँगरेजोंको ही यहाँका राजा बनाना था, यदि इस समय अँगरेजी राज्य स्थापित होनेमें ही इस देशकी भलाई थी, तो फिर आपने क्यों मुझे इस हिंसापूर्ण युद्ध-कार्यमें लगा रखा था?"

महात्माने कहा—"अँगरेज इस समय बनिये होकर टिके हुए हैं। केवल माल बेचने और टके पैदा करनेमें लगे हुए हैं। राज्यशासनका झंझट सिरपर लेना नहीं चाहते। अब इस सन्तान विद्रोहके कारण वे लोग मजबूर होकर राज्यशासन अपने हाथमें लेंगे, क्योंकि बिना राज्यशासनका प्रबंध ठीक हुए धनसंग्रह नहीं होने पाता। अँगरेजोंका राज्य स्थापित करनेहीके लिये यह सन्तान-विद्रोह हुआ है। अब आओ, ज्ञानलाभ करनेपर तुम आप ही समझ जाओगे।"

सत्यानन्द—"मुझे ज्ञानलाभकी लालसा नहीं! ज्ञानसे मुझे कोई मतलब नहीं है। मैंने जो व्रत ग्रहण किया है, उसीका पालन करूँगा। आशीर्वाद करें कि मेरी मातृभक्ति अचल हो।"

महात्मा—"व्रत तो सफल हो गया। तुमने माताका मंगल साधन कर डाला। अँगरेजी राज्य स्थापित करनेमें मदद पहुँचा ही दी। अब युद्धविद्रोहकी बात छोड़ो। लोगोंको खेती-बारी करने दो, जिससे लोगोंके भाग्यके दरवाजे खुल जायँ।"

सत्यानन्दकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने कहा-

"मैं तो शत्रुओंके रुधिरसे सींच-सींचकर माताका शस्य-शालिनी बनाऊँगा।"

महात्मा—"शत्रु कौन है? शत्रु अब रहे कहाँ? अँगरेज मित्र राजा हैं! अङ्गरेजोंके साथ युद्ध करने योग्य शक्ति भी नहीं है।"

सत्यानन्द—"न सही, मैं यहीं, इसी मातृप्रतिमाके सम्मुख प्राण त्याग करूँगा।"

महापुरुष—"यों ही अज्ञानमें पड़कर? चलो, चलकर ज्ञान लाभ करो। हिमालयके शिखरपर मातृमन्दिर है, वहाँसे मैं तुम्हें माताकी मूर्तिका दर्शन कराऊँगा।"

यह कह महापुरुषने सत्यानन्दका हाथ पकड़ लिया। अहा! कैसी अपूर्व शोभा थी। उस गम्भीर विष्णु मन्दिरमें, विराट् चतुर्भुजी मूर्तिके सामने, धुँधले प्रकाशमें वे दोनों महा प्रतिभा-पूर्ण पुरुष एक दूसरेका हाथ पकड़े खड़े हैं। किसने किसे पकड़ रखा है। मानों ज्ञानने आकर भक्तिको पकड़ लिया है, धर्मने आकर कर्मका हाथ थाम लिया है, विसर्जनने आकर प्रतिष्ठाको पकड़ रखा है; कल्याणीने शान्तिको आ पकड़ा है। यह सत्यानन्द शांति है और वह महापुरुष कल्याणी है। सत्यानन्द प्रतिष्ठा है, महापुरुष विसर्जन हैं। विसर्जन आकर प्रतिष्ठाको ले गया।

* इति शुभम् *

परिशिष्ट क

—:o:—

संन्यासी-विद्रोहका इतिहास

(क्लेगके स्मरण लेखमें प्रकाशित वारेन हेस्टिंग्जके पत्रोंसे उद्धृत ।)

वारेन हेस्टिंग्जने सर जार्जकोलब्रुकके पास २ री फरवरी १७७३ के पत्रमें निम्नलिखित बातें लिखी थीं—

"आपको संन्यासियों अर्थात् रमते फकीरोंका उपद्रवका वृत्तान्त मालूम हो होगा। ये लोग हर साल इसी समय हजार दस हजारका दल बाँधकर जगन्नाथजी की यात्रापर जाते हुए इस प्रांत में उपद्रव मचाते हैं। कप्तान टामस नामक एक वीर सैनिक अफसर इन लुटेरों-के फेरमें पड़कर मारा गया। उसने थोड़ेसे देशी सिपाहियोंको लेकर ३००० लुटेरोंका रंगपुर के समीप सामना किया था। टामसके सिपाही बड़ी बहादुरीके साथ लड़े और अपनी योग्यतासे अधिक प्रशंसाके पात्र बने। उत्तरी जिलों में इनके उपद्रवोंका मालगुजारीपर बुरा प्रभाव पड़ा है। सिपाहियोंके नूतन सङ्गठनसे, जो कोर्ट आफ डाइरे-क्टर्सके आदेशानुसार किया गया है और उनपर जिस ढङ्गके प्रांतकी रक्षाका भार अर्पण किया जा रहा है, उससे आशा की जाती है कि भविष्यमें इनके उपद्रवोंसे यहाँकी रक्षा भलीभाँति हो सकेगी।"

(क्लेगके स्मरण लेख, भाग १२८२)

*　*　*　*

इसके बाद ९ वीं मार्चके जोशिस डिउप्रके पास हेस्टिंग्जसाहबने जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने इस सम्बन्धमें लिखा था—

"मेरे प्रान्तमें इस वर्ष खासा युद्ध छिड़ गया है। संन्यासियोंके एक गिरोहके परगना सिपाहियोंने दो दलोंको हरा दिया है। और

उनके दो सेनानायकोंको मार डाला है। एक तो कप्तान थे जिसे आप जानते होंगे। ब्रिगेड सिपाहियोंके दल इस समय उनका पीछा कर रहे हैं। वे लड़ न सकेंगे, क्योंकि न तो उनके पास डेरे-खीमे हैं, जिनसे जगह-ब-जगह पड़ाव डाल सकें, न उनके पास सैनिकोंके योग्य कपड़े-लत्ते हैं, इसलिये उनका भागना निश्चित है। तो भी मुझे आशा है कि वे कुछ कर दिखायेंगे, क्योंकि बीचो-बीचमें नदियाँ पड़ती हैं, जिनके पार उतरना संन्यासियोंके लिए मुश्किल हो जायगा। अगर हमारे सैनिक ठिकानेसे पीछा करते चले गये।"

"इन लोगोंका इतिहास बड़ा विचित्र है! ये तिब्बतकी पहाड़ियोंके दक्खिन, काबुलसे चीनतक फैली हुई विस्तृत भूमिमें रहते हैं। प्रायः नंगे रहते हैं और न तो इनकी निश्चित बस्ती है, न घर द्वार है न जोरू बच्चे हैं। ये एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं और जहाँ कहीं हट्टे-कट्टे बालक देखपाते हैं वहाँ से उन्हें उड़ा लाते हैं। इसीसे ये लोग हिन्दुस्तानमें सबसे बढ़कर वीर और मुस्तैद मनुष्य हैं। इनमें कितने ही सौदागर भी हैं। ये सब रमते योगी हैं और सब लोग इनका बड़ा सन्मान करते हैं। इसी कारण हम लोगोंको सर्वसाधारणसे न तो इनके बारेमें कुछ पता मालूम होता है न इन्हें दबानेमें सहायता मिलती है—यद्यपि इसके विषयमें बड़े-बड़े हुक्मनामे जारी किये गए। ये लोग कभी-कभी इस प्रांतमें ऐसे घुस पड़ते हैं, मानों आसमान से टपक पड़े हों! ये बड़े हट्टे-कट्टे, साहसी और अतुल उत्साहवाले होते हैं। हिन्दुस्तानके 'जिपसी'* अर्थात् संन्यासी ऐसे ही अद्भुत हैं।"

"मैंने परगना सिपाहियोंको हटाकर सीमाके नाके-नाके

---

* 'जिपसी' युरोपके जंजरोंको कहते हैं जिनके न तो घर द्वार होता है न कहीं जगह। इधर-उधर घूमना और लूटपाटकर खाना ही इनका काम है।—अनुवादक

ब्रिगेड सिपाहियोंके थाने कायम कर दिये हैं जो प्रांतकी रक्षा करते हैं। हर तीसरे महीने ये बदले जाते हैं इससे आशा है कि आगे चलकर उपद्रव न होने पायेगा, प्रान्त सुरक्षित रहेगा। चूँकि हमलोगोंने इनके हाथसे मालगुजारी वसूल करनेका काम छीन लिया है, इसलिये हमारे आदमियोंके अत्याचारोंसे भी लोग बच जायँगे।

* * * *

फिर २१ मार्च १७७५ को वारेन हेस्टिंग्जने इन लोगोंके बारेमें निम्नपत्र लिखा था—

"हालमें यहाँपर संन्यासी कहलानेवाले कुछ थोड़ेसे उपद्रवकारियों-के मारे बड़ा हैरान होना पड़ा है। इनलोगोंने बड़े-बड़े दल बाँधकर सारे प्रांतको तबाह कर दिया है। इन लोगोंके उपद्रव और हमलोगों-के रोकनेकी चेष्टाका हाल आपको हमलोगोंके पत्र और सलाहोंसे मालूम हो गया होगा। उन्हें देखनेसे आपको मालूम हो जायगा कि गवर्नमेण्टका कोई अपराध नहीं है। इस समय हमारी पांच पलटनें उनका पीछा कर रही हैं। मुझे आशा है कि वे अपनी करनीका पूरा-पूरा फल पा जायँगे; क्योंकि सिवा इस बातके कि वे भागनेमें बड़े तेज हैं और किसी बातमें वे हमारे आदमियोंसे चढ़े-बढ़े नहीं हैं। इन उपद्रवोंका विस्तृत विवरण आपको रोचक न होगा, क्योंकि उनमें कोई महत्व नहीं है!"

(ग्लेगके स्मरणलेख भाग १ पृष्ठ २६७)

उसी तारीखको हेस्टिंग्ज साहबने सर जार्ज कोलब्रुकके नाम निम्न-लिखित पत्र लिखा था—

"पिछले पत्रमें मैंने लिखा था कि जहाँतक मालूम पड़ता है, संन्यासियोंने कम्पनीके अधिकारभुक्त प्रदेशोंको खाली कर दिया है। यही खबर मुझे उस समय मिली थी और जैसी अवस्था थी उससे मुझे यह बात ठीक भी मालूम पड़ी। पर मालूम होता है कि या तो वे

ब्रह्मपुत्र नदीको पार न कर सके या अपना इरादा बदल दिया वे २ २ या ३-३ हजारके दलमें विभक्त होकर एका-एक रंगपुर और दिनाज-पुरके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें दिखाई दिये। देशवासियोंको कड़ी-कड़ी धमकियाँ दी गयी हैं कि अगर वे संन्यासियोंके आनेकी सूचना तत्काल न दे दिया करेंगे, तो उनको बड़ी सख्त सजा दी जायेगी। तो भी लोगोंपर इन संन्यासियोंका जादू ऐसा चढ़ा हुआ है कि कोई सूचनातक नहीं देता। अतः जबतक वह बस्तियोंमें घुस नहीं आते, हमलोगोंको उनका कुछ पता नहीं लगता। मानों ये लोग इन देशवासियोंकी मूर्खताका दण्ड देनेके लिये आसमानसे उतर आये हैं। हालमें इनका एक दल कप्तान एडवार्डिसके सैन्य दलसे भिड़ गया था। इस लड़ाईमें कप्तान एडवार्डिस एक नालेको पार करते समय मारे गये और उनके सिपाही भाग खड़े हुए। इस दलमें हमारे सबसे रद्दी परगना-सिपाही भरे हुए थे, उन्होंने बुरी तरह पीठ दिखाई। इस जीतसे संन्यासियोंकी हिम्मत बढ़ गयी और उन्होंने उक्त जिलोंमें हर जगह ऊधम मचाना शुरू कर दिया। कप्तान स्टुअर्टने १६ वीं नम्बर पलटनके साथ उनका पीछा किया, पर कोई नतीजा न निकला। जबतक वे एक जगह पहुँचते संन्यासी उसे ध्वंस कर चपत हो जाते थे। मैंने बरहमपुरसे एक दूसरी पलटन कप्तान स्टुअर्टसे मिलकर काम करनेके लिये भेज दी। उन्हें स्वतन्त्र युद्ध करनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी ताकि उन्हें मुकाबिला करनेका अच्छा अवसर मिले। साथ ही मैंने दानापुरकी एक पलटनको तिरहुत होते हुए पूर्नियाकी उत्तरी सीमा होकर उसी राहसे होकर जाने-का हुक्म दे दिया है, जिधरसे संन्यासी बहुधा जाया करते हैं ताकि यदि वे उस राहसे गये तो घेर लिये जायंगे। इस पलटनको यह भी हुक्म दिया गया था कि अवसर आ जानेपर संन्यासियोंको दबाकर वे लोग हिसारकी तरफ बढ़ें और वहाँ कप्तान जोन्ससे मिलकर शान्ति-स्थापनाकी चेष्टा करें।"

"संन्यासियोंके बहुतसे दल पूर्निया जिलेमें घुस पड़े और गावोंमें आग लगाकर लोगोंका मालमता लूटने और बरबाद करने लगे। तब वहाँके कलक्टरने कप्तान ब्रुकके पास समाचार भेजा और सहायता माँगी। कप्तान ब्रुक हाल होमें राजमहलके पास पानीती आये थे। उनके पास एक ताजादम पैदल सेना थी। कप्तानने खबर पाते ही नदी पारकर संन्यासियोंके विरुद्ध कारवाई करनी शुरू की। उस समय संन्यासी कोसीनदी पारकर भाग जानेकी चेष्टा कर रहे थे। इसी समय कप्तानके साथ उनके एक दलकी मुठभेड़ हो गयी, पर बिना किसी क्षतिके वे सब नदी पार कर गये जिससे ये लोग उनका कुछ भी बिगाड़ न सके। यह साफ मालूम पड़ता है कि संन्यासी यथाशीघ्र कम्पनीके अधिकार-मुक्त प्रदेशसे भाग जाना चाहते हैं। पर मुझे विश्वास है कि उनके कुछ गिरोहोंके साथ हमारी किसी न किसी सेनाका मुकाबिला अवश्य ही हो जायगा और वह उनकी उद्दण्डताका उन्हें पूरा-पूरा दण्ड दे सकेगी।

यद्यपि यह असम्भव है, तथापि इन संन्यासियोंके उपद्रवोंके कारण मालगुजारीमें कमी पड़नेकी सम्भावना मालूम होती है; क्योंकि कहींके लोग तो सचमुच इनसे सताये गये हैं और कहींके लोग झूठमूठ यह बहाना निकालेंगे कि वे लोग भी संन्यासियों द्वारा लूटे-खसोटे गये हैं। इसी विचारसे बोर्ड आफ रेवेन्यूने यह प्रस्ताव किया है कि मालगुजारीमें कमी पड़नेका कोई कारण नहीं सुना जायगा और त्रुटि करनेवालोंको दण्ड दिया जायगा। इस तरहसे वे लोग कम्पनीको हानिसे बचानेकी पूरी चेष्टा कर रहे हैं। जहाँ-तहाँ सीमापर पलटनें रख दी जायँगी, ताकि फिर सन्यासी न घुसने पायें या और तरहके लुटेरे डकुओंका उपद्रव न होने पाये। यह सावधानी गत बारके संन्यासी गयी विद्रोहको देखकर ही काममें लायी है। जहाँतक मेरा ख्याल है, थोड़ी-सी ही सेनासे यह काम हो जायगा और मुझे आशा है कि

आगेसे संन्यासी भी यहाँ उपद्रव न करने पायेंगे।"

२० मार्च १७७१ को हेस्टिंग्जने लारेन्सके नाम निम्नलिखित पत्र लिखा था—

"गत वर्ष संन्यासियोंने जैसा उपद्रव किया था, वैसा ही इस वर्षके प्रारम्भमें भी हुआ। पर चूँकि हम लोग पहले हीसे उनका सामना करनेके लिये तैयार थे और उन्होंने पहले ही धक्केमें खूब मुँहकी खायी, इसीसे हमलोगोंने उन्हें एकदम देशसे बाहर कर दिया है। हम लोगोंने कुछ घुड़सवार उनके पीछे लगा दिये हैं, जिससे वे बहुत डर गये हैं, क्योंकि पैदल सिपाहियोंसे तो वे दौड़नेमें जीत जाते थे पर घोड़ोंकी बराबरी नहीं कर सकते। मेरा इरादा उन्हें उत्तर-पूर्व प्रदेशसे भगा देनेका है, जहाँ उन लोगोंने अड्डा कायम कर रखा है। मैं उन जमींदारोंकी भी पूरी मरम्मत कर देना चाहता हूँ, जो उन्हें शरण और सहायता दे रहे हैं।"

परिशिष्ट ख

संन्यासी-विद्रोहका इतिहास

(हण्टर रचित "बंगालके ग्रामोंका इतिहास" से उद्धृत)

"कौंसिलने १७७१ में लिखा था—"डाकुओंका एक दल संन्यासी या फकीरका वेश बनाये, इन मुल्कोंको तबाह करता फिरता है। ये तीर्थयात्रीके रूपमें रहते हैं और बंगालके प्रधान भागको लूटते-खसोटते हैं। ये जहाँ जाते वहाँ भीख माँगकर खाते, चोरी करते, डाका डालते या जैसा मौका देखते, कर बैठते हैं। अकालके बाद कई वर्षोंतक इनके दलमें वे किसान भी मिलते चले गये जिन्हें न तो बीजके लिये अन्न मिल सका, न जमीन जोतनेके लिये हल-फावड़े मिले। १७७२ के जाड़ोंमें इन लोगोंका प्रायः ५० हजारका दल दक्षिण बंगालके हरे-भरे